पतिव्रता

(1)

राजा पुहुपाल अपने राजसिंहासन पर आरूढ़ थे। मंत्रीगण नगरी की शोभा का बखान कर रहे थे। प्रधानमंत्री ने कहा–

'राजन्! इस उज्जयिनी नगरी में राजपथ के दोनों ओर गगनचुम्बी राजप्रासादों की कतार बनी हुई है। उनके ऊपरी भाग में कंगूरे के ऊपर कलश और ध्वजा की अपूर्व शोभा दिखाई दे रही है। आपके नगर में कुबेर जैसे धनपति निवास कर रहे हैं, अपनी प्रजावर्ग में अनेक श्रेष्ठ विद्वान् भी हैं। आपके पराक्रम की प्रशंसा सारे देश में फैल रही है। इस वैभवशाली नगर में कोई भी दुःखी एवं दरिद्र नहीं है। यह नगर अनेक वन, उपवन, वापी, तालाब, कोट, खाई इत्यादि से युक्त और सभी साधनों से सम्पन्न है।

इत्यादि चर्चा से मंत्रीगण महाराजा पुहुपाल का मन प्रसन्न कर रहे थे। इसी मध्य महारानी निपुणसुंदरी आ गईं। यद्यपि राजा के अनेक रानियाँ थीं तथापि निपुणसुंदरी को पट्टरानी का सम्मान प्राप्त होने से वे ही सर्व में प्रधान थीं। इनके सुरसुंदरी और मैनासुंदरी नाम की दो कन्यायें थीं। ये कन्यायें जैसे रूप में विशेष थीं, वैसे ही गुणों में भी सर्वश्रेष्ठ

थीं। जब रानी ने यथोचित आसन ग्रहण कर लिया तब कुछ यत्र-तत्र की चर्चा के अनंतर राजा ने कहा–

'अपनी इन दोनों पुत्रियों को विद्या अध्ययन कराना चाहिए क्योंकि विद्या धन ही जगत् में महाधन है। इन दोनों की अवस्था भी अब विद्या सीखने की हो चुकी है। नीति भी यही कहती है कि जीवन के प्रारंभ काल में विद्या का अर्जन करना चाहिए। ये कन्याएँ दो कुल की भूषण हैं अतः इन्हें अच्छी से अच्छी सर्व विद्या-कलाओं में पारंगत कर देना चाहिए। फिर इन कन्याओं की बुद्धि भी तो बहुत सूक्ष्म है।'

इतना सुनते ही प्रसन्नचित्त हुई रानी ने कहा–

'स्वामिन्! आपने बहुत ही अच्छा सोचा है। इन पुत्रियों का कोमल हृदय विद्या से सुसंस्कारित होकर खिल उठेगा। इन बालिकाओं में विनम्रता, सरलता, दया आदि स्वाभाविक गुण विद्यमान हैं वे विद्या के संस्कार से चमकने लगेंगे और इनका जीवन भी धन्य हो जावेगा।'

तभी राजा ने बड़ी पुत्री सुरसुंदरी को बुलवाया। पुत्री सभा में प्रवेश कर पिता को प्रणाम करते हुए बोली–

'पिताजी प्रणाम!'

'पिता ने पुत्री को पास में बिठाते हुए बड़े प्रेम से कहा–

'खुश रहो बेटी!'

पुनः प्यार से उसके माथे पर हाथ फिराते हुए पूछा–

'बेटी! तुम्हारी अब विद्या पढ़ने की उम्र हो गई है। कहो पढ़ोगी न?'

पुत्री खुश होकर कहती है–

'हाँ पिताजी! अवश्य पढ़ूँगी। मुझे सभी विद्यायें पढ़ा दो।

पिता पुहुपाल बहुत ही प्रसन्न हो गए और पूछने लगे–

'अच्छा बेटी! बताओ, तुम किस गुरु से पढ़ना चाहती हो?'

सुरसुंदरी ने कहा–

'मैं शैव गुरु से पढ़ना चाहती हूँ।'

राजा ने शैव गुरु को बुलवाया। शैव गुरु ने सभा में प्रवेश करते ही राजा को शुभाशीर्वाद देते हुए कहा–

'स्वस्ति हो महाराज!'

राजा ने विनय से उन्हें उच्च आसन पर बिठाया और कुशल क्षेम पूछने के बाद निवेदन किया–

'गुरुदेव! आप हमारी सुरसुंदरी कन्या को विद्या अध्ययन कराइए।'

ब्राह्मण गुरु प्रसन्न होते हुए बोले–

'बहुत अच्छा महाराज! आपने बहुत ही सुंदर विचार बनाया है। कन्याओं को विद्या अध्ययन कराकर सर्वकलाओं में निपुण बना देना ही माता-पिता का कर्तव्य है।'

रानी ने कहा–

'गुरु महाराज! मेरी कन्या सुशीला है, सर्वगुणसम्पन्न है, अब आप इसे विद्याओं में और निष्पन्न कर दीजिए।'

ब्राह्मण महोदय ने कन्या की ओर देखकर पूछा–

'बेटी! तुम्हें पढ़ना है ना?'

सुरसुंदरी ने विनय से उत्तर दिया–

'हाँ, हमें पढ़ना है।'

तभी राजा ने ब्राह्मण गुरु को बहुत कुछ भेंट देकर अपनी सुरसुंदरी कन्या सौंप दी और कहा–

'ठीक है, गुरुदेव! आप इसे अब अपनी ही कन्या समझें और समुचित रीति से सम्पूर्ण विद्याओं में, सर्वशास्त्रों में कुशल बना दें।'

ब्राह्मणदेव खुशी से राजा के आदेशानुसार पुत्री को साथ लेकर चले गये। तभी राजा पुहुपाल ने अपनी छोटी कन्या मैनासुंदरी को बुलाया। पुत्री ने आकर विनय से माता-पिता को प्रणाम किया–

'पिताजी! प्रणाम!'

पिता पुहुपाल ने प्यार से कन्या के शिर पर हाथ फेरते हुए कहा–

'चिरंजीव रहो बेटी! आओ यहाँ बैठो।'

उसी मध्य मैनासुंदरी ने माता को भी नमस्कार किया–

'माताजी प्रणाम!'

माता निपुणसुंदरी ने भी कन्या की पीठ थपथपाकर आशीर्वाद दिया–

'खुश रहो बेटी!'

पुत्री माता-पिता के पास बैठ गई। तब पिता ने कहा–

'बेटा! अब तुम्हारी उम्र खेलने की नहीं है प्रत्युत् विद्या अध्ययन करने की है। बोलो! पढ़ना है क्या?'

मैना ने बड़े हर्ष से उत्तर दिया–

'हाँ पिताजी! हमें पढ़ना है।'

'अच्छा! तो बताओ, तुम किसके पास पढ़ोगी?'

'पिताजी! मैं मंदिर जी में जाऊँगी। वहीं पर मुनिराज के पास पढ़ूँगी।'

कन्या के उत्तर को सुनकर माता-पिता बहुत ही प्रसन्न हुए और बोले–

'बहुत अच्छा बेटी! प्रातः जिनमंदिर में चलकर तुम्हें जिन गुरु के पास पहुँचाकर आयेंगे। तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही तुम्हारी पढ़ाई करायेंगे।'

मैना प्रसन्न हो गई। इसी मध्य मंत्रियों ने कहा–

'यह कन्या बहुत ही होनहार है। देखो, यह जैनमुनि के पास विद्या सीखना चाहती है।'

प्रातःकाल राजा-रानी अपनी मैना कन्या को साथ लेकर अनेक परिकर के साथ जिनमंदिर में पहुँच गए। वहाँ पहुँचकर चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणा दीं। पश्चात्–

'निःसही, निःसही, निःसही' मंत्र का उच्चारण करते हुए अंदर प्रवेश कर–

'ॐ णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।'

ऐसा मंत्र पढ़कर भगवान को पंचांग नमस्कार किया। अनंतर रानी निपुणसुंदरी ने भक्ति में गद्‌गद हो भगवान का स्तवन करना प्रारंभ कर दिया। साथ में मैनासुंदरी भी स्तोत्र पाठ बोलने लगी–

'दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम्।'

इत्यादि प्रकार से दर्शन स्तोत्र पढ़कर अनुचर जनों के

हाथ से अष्टद्रव्य की सामग्री लेकर राजा ने रानी और पुत्री के साथ भगवान की अष्टद्रव्यों से पूजा की पुनः वहीं पर विराजमान मुनिराज के निकट पहुँचकर उन्हें नमस्कार किया–

'हे भगवन्! नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु।'

मुनिराज ने तीनों को आशीर्वाद दिया–

'सद्धर्मवृद्धिरस्तु।'

पुनः राजा ने पूछा–

'भगवन्! आपके रत्नत्रय में कुशलता तो है?'

मुनिराज ने कहा–

'हे वत्स! जिनेन्द्रदेव की कृपाप्रसाद से मेरा रत्नत्रय सकुशल है। जिनेन्द्रदेव के चरणकमल का प्रसाद ही भव्यों को सर्व कुशल मंगल देने वाला है।

राजा-रानी बहुत ही प्रसन्न हुए और मैनासुंदरी भी बहुत ही प्रसन्न हुई। पुनः राजा ने कहा–

'प्रभो! मेरी यह पुत्री मैना आपके पास विद्या अध्ययन करना चाहती है। सो आप कृपा कर इस पुत्री को विद्यादान देकर कृतार्थ करें।'

इतने में ही मैना ने भी हाथ जोड़कर विनय से प्रार्थना की–

''हे गुरुदेव! कृपा करके आप मुझे विद्यारूपी निधि दीजिये।

मुनिराज ने प्रसन्नमुद्रा में कहा–

''राजन्! आप की तथा आपकी पुत्री मैना की भावना बहुत ही उज्ज्वल है जो कि जैनगुरु के पास पढ़ानें का आपने निर्णय लिया है। सचमुच में समीचीन विद्या ही इस जीव को संसार समुद्र से पार कर देती है।....

अच्छा तो आप इस कन्या को आर्यिका के पास ले जाओ। वहीं पर इसे पढ़ने के लिए छोड़ दो।''

राजा पुहुपाल बहुत ही प्रसन्न हुए और पुनः पुनः मुनिराज को नमस्कार कर आर्यिका जी के पास पहुँच गये। तीनों ने विनय से आर्यिका को नमस्कार किया–

''हे माताजी! वंदामि,वंदामि।'

आर्यिका ने तीनों को आशीर्वाद दिया–

'सद्धर्मवृद्धिरस्तु।'

'आपके रत्नत्रय की कुशलता तो है?'

'अर्हंत प्रभु की कृपा से सब कुशल है।'

पुनः राजा विनय से निवेदन करते हैं–

'माताजी! यह मेरी कन्या है, इसका नाम मैनासुंदरी है। यह मुनिराज के पास विद्या पढ़ना चाहती थी किन्तु मुनिराज जी ने इसे आपके पास भेजा है। सो अब आप कृपाकर इसे अपना वरदहस्त प्रदान कीजिए।'

इतना सुनकर आर्यिका ने प्रसन्नता से उत्तर दिया–

''बहुत अच्छी बात है। मुझे मुनिराज की आज्ञा स्वीकार है। मैं इस बालिका को इसकी इच्छा के अनुसार ही विद्या अध्ययन कराऊँगी।''

तब मैनासुंदरी ने हाथ जोड़कर गद्गद वाणी में कहा–

''अहो! आज मेरा जीवन धन्य हो गया, आज मुझे साक्षात् धर्म की प्रतिमूर्ति आर्यिका जी गुर्वानी के रूप में मिल गईं। मैं कृतार्थ हो गई।

ऐसा कहते हुए मैना ने आगे बढ़कर माताजी के चरण-

कमलों का स्पर्श कर उनकी चरणरज को मस्तक पर चढ़ाया और उन्हीं के पास बैठ गई। आर्यिकाजी ने भी मैना के शिर पर पिच्छिका रखकर शुभ आशीर्वाद प्रदान किया और वात्सल्य भाव से उसकी पीठ पर हाथ फिराकर आश्वासन दिया।

पिता पुहुपाल आर्यिका जी के इस वात्सल्य प्रेम को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और अपनी रानी से बोले–

''इस कन्या को यहाँ धर्म माँ मिल गई हैं जो कि हम और आप से भी अधिक प्यार देंगी तथा अमृत के समान विद्यादान भी देंगी।''

रानी ने भी पुत्री वियोग का किंचित् शोक और उचित स्थान मिलने का हर्ष इन दोनों से मिश्रित भाव को मन में धारण करते हुए संतोष की सांस लेकर कहा-

'बड़े ही संतोष की बात है कि कन्या की इच्छा के अनुरूप ही उसे जैनगुरु–आर्यिका जी के पास पढ़ने का सौभाग्य मिल गया है। अब अपने को कोई चिंता नहीं रही।'

इतना कहकर राजा पुहुपाल रानी के साथ ही आर्यिका माता को नमस्कार कर पुत्री को यथोचित शिक्षा देकर वहीं मंदिरजी में माताजी के पास उसे छोड़कर वापस अपने राज-महल में आ गये।

(2)

राजपुत्री सुरसुंदरी ने शैवगुरु के पास वेद, पुराण, ज्योतिष, वैद्यक, छन्द, काव्य, अलंकार और संगीत आदि अनेक विद्याओं को पढ़ लिया। तब शैवगुरु ने उस विदुषी पुत्री

को साथ लेकर राजा के पास आया, उसने राजा को आशीर्वाद देकर उनकी कन्या उन्हें सौंप दी। राजा ने भी उन शैवगुरु को उचित पारितोषिक देकर संतुष्ट किया और आदरपूर्वक विदा कर दिया तथा कन्या को सर्वविद्याओं के विषय में निष्णात देखकर उसके सिर पर हाथ फिराकर उसे शुभाशीर्वाद के साथ शाबासी देकर घर भेज दिया।

एक दिन राजा अपने मंत्रियों के साथ बैठा हुआ राजकार्य के विषय में विचार-विमर्श कर रहा था। उसी समय पुत्री सुरसुंदरी वहाँ आ गई। उसने विनय से पिता को प्रणाम किया और निकट में बैठ गई। राजा अपनी पुत्री को युवावस्था में देखकर एक क्षण के लिए मन में उसके विवाह के बारे में विचार करने लगे। पुनः कुछ सोचकर पुत्री से पूछा–

'हे पुत्रि! अब तेरी उम्र विवाह के योग्य हो गई है। किसी योग्य राजपुत्र के साथ तेरा संबंध करना उचित होगा। मैं चाहता हूँ कि तू स्वयं अपने मनो अभिलषित वर को चयन कर ले, तो बहुत ही अच्छा होगा।'

पिता के वचनों को सुनकर सुरसुंदरी ने पहले तो लज्जा से शिर नीचा कर लिया पुनः पिता की प्रेरणा से उसने आँखों को नीचा कर ही उत्तर दिया–

'हे पिताजी! विद्या, वैभव, रूप, एवं यौवन आदि उत्तम ऐश्वर्य पुण्ययोग से प्राप्त होते हैं, इन सबको आपके आशीर्वाद से मैंने प्राप्त कर लिया है। अब गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर अपने कर्तव्य का पालन करना ही अनादि परम्परा है।..... आपने जो इच्छित वर के विषय में पूछा है उसके विषय में

मेरा नम्र निवेदन है कि कौशाम्बी नगरी के राजा के पुत्र हरिवाहन विद्या, वय, बुद्धि आदि अनेक गुणों से युक्त हैं। इसलिए वही वर मुझे स्वीकार है।'

पुत्री की बात सुनकर राजा पुहुपाल बहुत ही प्रसन्न हुये। मंत्रियों से परामर्श कर कौशाम्बी नगरी के राजा के पास कुशल दूत के द्वारा पत्र भेजकर विवाह के बारे में सारा निश्चय करके उत्तम मुहूर्त में पुत्री का विवाह संपन्न कर दिया।

एक दिन मैनासुंदरी ने जिनमंदिर में जाकर भगवान ऋषभदेव की जिनप्रतिमा का विधिवत् अभिषेक पूजन किया। पूजा विधि संपन्न कर स्वर्णपात्र में जिन अभिषेक का गंधोदक लेकर पिता के पास पहुँची। पिता को झुककर नमस्कार किया और सामने गंधोदक रख दिया–

'पिताजी प्रणाम!'

पिता पुहुपाल ने बड़े प्यार से आशीर्वाद देते हुए कहा–

'खुश रहो बेटी! आओ।'

पास में बैठने का संकेत किया। मैनासुंदरी उचित स्थान पर बैठ गई। तब पिता ने पूछा–

'बेटी! कटोरी में यह क्या है?'

मैना ने कहा–

'पिताजी! यह गंधोदक है, जिन भगवान के अभिषेक का जल है। इसे मस्तक पर, नेत्रों में, हृदय में, कंठ में लगाना चाहिए। इसके लगाने से अनेक व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं तथा मस्तक पवित्र हो जाता है और जीवन भी धन्य हो जाता है। इस गंधोदक को देव, मनुष्य, विद्याधर

और इंद्र भी भक्तिपूर्वक अपने मस्तक पर चढ़ाते हैं। श्री तीर्थंकर देव का जन्म होते ही इंद्रगण उस जन्मजात जिनबालक को लेकर असंख्य देवों के साथ सुमेरु पर्वत पर जाते हैं, वहाँ पर जिनबालक को पांडुक शिला पर विराजमान कर क्षीरसागर के जल से 1008 स्वर्ण कलश भर कर लाते हैं और वहाँ पर तीर्थंकर प्रभु का अभिषेक करते हैं। उस अभिषेक का जल इतना अधिक होता है कि सुमेरुपर्वत के ऊपर से नीचे तक बहने लगता है और नदियाँ बन जाती हैं। परम भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक सुर, असुर, नर और विद्याधर अपने मस्तक पर उस गंधोदक को लगाते हैं और इतना अधिक लगाते हैं कि नदी का जल सूख जाता है। पिताजी! इस गंधोदक की इतनी अधिक महत्ता है कि हम जैसे तुच्छ बुद्धि वाले इसका वर्णन नहीं कर सकते, यह सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला है इसलिए आप इसका वंदन कर इसे अपने उत्तमांगों में लगाइए।'

पुत्री की इतनी ज्ञानपूर्ण बातें सुनकर पिता पुहुपाल बहुत ही प्रसन्न हुए। भक्ति से हाथ जोड़कर गंधोदक का वंदन किया पुनः उसे हाथ में लेकर अपने नेत्रों में, शिर पर और कंठ में तथा वक्षस्थल में लगाया पुनः राजा ने पुत्री को सर्वगुणसंपन्न देखकर, बड़े प्यार से उसके मस्तक पर हाथ फिराकर बार-बार प्रशंसा की और बोले–

'बेटी! तुम आर्यिका के पास पढ़ी हो, बताओ पुण्य क्या है?'

मैना ने कहा–

'पिताजी! अर्हंत देव, दया प्रधान धर्म और निर्ग्रंथ गुरु की भक्ति, उनकी उपासना इन कार्यों से ही पुण्य बंध होता

है। यह पुण्य आत्मा को पवित्र करता है और दुर्गतियों से बचाकर उत्तम गति में ले जाता है। यही पुण्य परंपरा से मोक्ष को भी प्राप्त करा देता है।'

पुत्री के समुचित उत्तर को सुनकर पिता पुहुपाल ने मन ही मन उसके ज्ञान की सराहना की पुनः बोले–

'पुत्रि! तुम्हें अपनी इच्छा के अनुसार जो भी वर अभीष्ट हो कहो। तुम्हारी बड़ी बहन सुरसुंदरी के समान ही तुम्हारा भी विवाह तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही वर से कर दिया जाए।'

पिता की यह बात सुनकर मैनासुंदरी ने लज्जा से माथा नीचा कर लिया और चुपचाप खड़ी रही और वह सोचने लगी–

'माता-पिता जो भी वर कन्या के लिए उचित समझते हैं उसी के साथ उसका विवाह कर देते हैं। प्रायः यही सनातन परंपरा है पुनः पिता ने मेरे से यह प्रश्न आज क्यों कर दिया?.....'

मैना के अभिप्राय को न समझ कर पुनः राजा ने कहा–

'बेटि! इसमें लजाने की क्या बात है? जिसे तुमने अपने मन में निश्चय किया हो, निःसंकोच भाव से उसे कह दो।'

'पिताजी! शीलवती कन्याएँ अपने मुख से किसी अभीष्ट वर (पति) की याचना कदापि नहीं करती हैं ।उनके माता-पिता जिस वर को योग्य जानकर कन्या का विवाह उसके साथ कर देते हैं, वही उनके लिए सर्वस्व हो जाता है।.....।'

तब राजा ने कहा–

'बेटि! तू अपनी इच्छानुसार वर का चयन करेगी तो तू सुख-दुःख में माता-पिता को कभी दोष नहीं देगी।'

तब मैना ने कहा–

'पिताजी! प्रथम तो माता-पिता अपनी संतान का अहित एवं अकल्याण न तो कभी कर सकते हैं और न ही कभी सोच ही सकते हैं। फिर भी यदि कदाचित् कन्या को योग्य वर न मिल सके तो पुनः वह कन्या उसे अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल समझे और धैर्यपूर्वक उसी पति की सेवा में अहर्निश तत्पर रहे, यही अनादि परंपरा है। इस संसार में इष्ट वस्तु का संयोग और अनिष्ट वस्तु का वियोग अथवा इष्ट का वियोग-अनिष्ट का संयोग यह सब पूर्वकर्म के अनुसार से ही होता रहता है। इसलिए मैं आपसे इस विषय में कुछ भी नहीं कहना चाहती, आपको पूर्ण अधिकार है, आप चाहे जिसके साथ विवाह कर दें। मेरे भाग्य में जो लिखा होगा, वही होगा।'

मैना की इस लंबी उक्ति को सुनकर राजा को क्रोध आ गया, उन्होंने कहा–

'बस, बस, चुप रह! क्या तेरे गुरु ने तुझे यही सिखलाया है कि अपने प्रति उपकार करने वालों का अनादर करना, उनकी आज्ञा का उलंघन कर उन्हें जवाब देना? क्या जो तुझे मेरे घर में यह सब उत्तमोत्तम सुख सामग्री मिली है, वह तुझे तेरे कर्म से मिली है? अरे! इसे कृतघ्नता के सिवाय और क्या कहा जा सकता है?'

राजा के क्रोधपूर्ण शब्दों को सुनकर मैना एक क्षण तो

चुप रही पुनः साहस कर बोली–

'पिताजी! आप नाराज न होइए। मैं जो आपके घर में जन्मी हूँ, तो यह सब मेरे पूर्व के पुण्य का ही फल है। अन्यथा मैं किसी गरीब या भिखारी के यहाँ जन्म ले लेती। मेरी गुर्वानी आर्यिका जी ने मुझे कर्म सिद्धांत को अच्छी तरह से पढ़ा दिया है। आप क्या और मैं क्या? इस संसार में तीर्थंकर भी कर्म के ही आधीन रहते हैं तभी तो भगवान ऋषभदेव को छह महीने तक आहार नहीं मिला था....।'

उस समय क्रोध और मान से भरे राजा को मैना की धर्मरूप युक्ति युक्त बातें अच्छी नहीं लगीं उसने पुनः क्रोध में तिलमिला कर कहा–

'ठीक है, मैं तेरे भाग्य को देखूँगा....।'

इतना सुनते मंत्रीगण सहम गये और बोले–

'हे नर नाथ! हम सब आपके पुण्य ही प्रताप से सुख भोग रहे हैं। यह कन्या अभी अबोध है इसके शब्दों का आपको कुछ ख्याल नहीं करना चाहिए।'

राजा ने और अधिक उग्र होकर कहा–

'मैं इसके कर्म के अभिमान को चूर कर दूँगा....।'

तब मंत्रियों ने कहा–

'महाराज! उद्यान भ्रमण का समय हो गया है। बाहर घोड़ा तैयार खड़ा है, आप उठिए और भ्रमण के लिए चलिए।

राजा उठकर मंत्रियों के साथ उद्यान भ्रमण के लिए चले गये और मैना अपने अंतःपुर में आ गई।

(3)

चम्पापुर के राजा अरिदमन ने अपने सामने विनय से बैठे हुए युवापुत्र श्रीपाल को देखकर मन में सोचा– "मेरा पुत्र श्रीपाल शास्त्र और शस्त्र विद्या में पूर्णतया निष्णात हो चुका है अब मेरा कर्तव्य है कि अपनी सनातन परंपरा के अनुसार पुत्र के कंधों पर राज्यभार डालकर स्वयं अपनी आत्मा का हित करूँ, अपना परलोक सुधारूँ।"

इतना विचार कर राजा श्रीपाल को योग्य शिक्षास्पद बातें बताई। पश्चात् शुभमुहूर्त में राज्यतिलक कर दिया। श्रीपाल ने भी पिता के भार को कुशलता से सँभालते हुए अपनी प्रजा को अपने वशीभूत कर लिया।

एक समय अकस्मात् श्रीपाल के कामदेव जैसे सौंदर्यवान् शरीर में कुष्ठ रोग हो गया। वह इतना बढ़ता गया कि उनके सारे हाथ के पैरों के अवयव भी गलने लगे और बहुत भयंकर दुर्गन्ध निकलने लगी। यहाँ तक कि लोगों के लिए उस चम्पानगरी में रहना अशक्य हो गया, कुछ लोग गाँव छोड़कर बाहर चले गये और बाहर नहीं जा सके तो लाचारी में मन मारकर रहते हुए भी क्षुब्ध हो गए। तब कुछ प्रमुख लोगों ने साहस करके राजा श्रीपाल के काका वीरदमन के पास आकर निवेदन किया–

"हे नरश्रेष्ठ! राजा श्रीपाल के पता नहीं कौन से कर्म का उदय आ गया है कि जिससे उन्हें इतना भयंकर कुष्ठरोग हो गया है। अहो! ये बालपन में भी सारी प्रजा के आँखों के तारे

थे, आठ वर्ष की उम्र में इतना यज्ञोपवीत संस्कार किया गया था, तभी से ये मद्य, मांस, मधु और सप्त व्यसन के त्यागी हैं, पंचाणुव्रत पालन करते हैं, भगवान की पूजन और दान में सतत इनकी प्रवृत्ति रहती है, आज विद्या में इनकी बराबरी का कोई राजा होना कठिन है। तर्क, छन्द, व्याकरण, गणित, सामुद्रिक-रसायन, संगीत, आयुर्वेद, धनुर्विद्या, जल में तैरना, हाथी, घोड़े, रत्न के परीक्षण की विद्या आदि सर्व विद्याओं में पंडित हैं। साथ ही प्रजावत्सल हैं, न्यायप्रिय हैं। इनमें अगणित गुण होने से प्रजा इन्हें पिता के समान आदर से देखती है। किन्तु.....आजकल इनके रोग की दुर्गन्धि के कारण अपनी नगरी का उजाड़ होता चला जा रहा है। लोग घर छोड़-छोड़कर अन्यत्र चले जा रहे हैं। सो आप इसके लिए कुछ सोचिए?"

भाई वीरदमन ने सारी बातें सुनीं और कुछ क्षण मन में गंभीरता से सोचा पुनः बोले–

"हे प्रजाजनों! श्रीपाल राजा का हृदय प्रजा के प्रति बड़ा ही दयालु है आप लोगों ने आज तक स्थिति क्यों छिपाई? हो सकता था कि वे स्वयं कुछ सोचते ....खैर! अभी भी आपने जा प्रजा के संकट की बात कही है उस पर जल्दी ही प्रतिक्रिया होगी। आप लोग शांति धारण करें।'

इतना सुनकर वे लोग अपने-अपने घर चले गए। इधर काका वीरदमन ने स्वयं राजा श्रीपाल के पास आकर एकांत में बैठकर सारी स्थिति बता दी, तब बहुत कुछ परामर्श के बाद श्रीपाल ने यह निर्णय किया–

"मैं स्वयं इस रोग के दूर होने तक यहाँ से निकलकर अन्यत्र निवास करूँगा, तब तक के लिए यह राज्य व्यवस्था आप सँभालें।"

घर आकर श्रीपाल ने अपनी माता कुन्दप्रभा को बड़े ही प्रयत्न से सान्त्वना देकर और उनकी आज्ञा तथा आशीर्वाद लेकर अपने 700 वीरों के साथ चम्पापुरी नगरी से प्रस्थान कर दिया। इन 700 वीरों को भी श्रीपाल के साथ ही वैसा ही भयंकर कुष्ठ रोग हो गया था।

ये लोग घूमते हुए उज्जैन शहर के बाहर बगीचे में आकर ठहर गये थे।

(4)

राजा पुहुपाल मैनासुंदरी से चर्चा के बाद विहार के लिए यहाँ आ गए। उन्होंने श्रीपाल को देखा और पूछा–

" आप कौन हैं? और यहाँ कैसे आ गए?"

श्रीपाल ने कहा–

"नरनाथ! अपने अशुभ कर्मों का फल भोगता हुआ, इष्ट मित्रों सहित यहाँ आकर ठहरा हूँ।"

'कर्मों का फल' शब्द सुनते ही राजा ने सोचा–

"मेरी पुत्री भी कर्मों की प्रधानता मानती है और यह भी कर्मों की प्रधानता मानकर उसी का फल भोग रहा है। .....यही वर पुत्री के योग्य होगा, वह अपने कर्मों का फल पा जायेगी।"

राजा ने श्रीपाल से पूछा–

"आपकी जाति क्या है? और धर्म क्या है?"

श्रीपाल ने कहा–

"मैं क्षत्रियराजा हूँ और जैनधर्म का मानने वाला हूँ।"

तब राजा ने कहा–

"ठीक है, आप यहाँ आये हैं तो अच्छा ही हुआ। मैं अपनी पुत्री का विवाह आपसे कर दूँगा।'

श्रीपाल आश्चर्यचकित हो बोले–

"राजन्! कहाँ मैं एक कुष्ठ रोगी और कहाँ...."

राजा ने बोले–

"सो तो मैं देख ही रहा हूँ।"

इतना सुनते ही मंत्री चुप नहीं रह सके और बोले–

" राजन्! आप यह कैसा अनर्थ करने जा रहे है? इस विषय में कुछ परामर्श तो कर लेना उचित था। ओह! कहाँ तो आपकी कन्या अत्यन्त सुकुमार, लोकोत्तर सुंदरी और कहाँ यह कुष्ठ रोगी?"

राजा ने कहा–

"मैंने सोचकर ही निर्णय लिया है इसलिए आप लोग चुप बैठें।"

मंत्री ने कहा–

"महाराज! इस विवाह की सभी निंदा करेंगे और आप भी पुनः पश्चात्ताप करेंगे...। यदि अज्ञानतावश बालकों से कोई अपराध भी हो जाये तो भी माता-पिता का कर्तव्य है कि उन्हें क्षमा ही कर दें न कि इतना कठोर दण्ड?...."

दूसरे मंत्री ने कहा–

'राजन्! अबोध अवस्था में की गई बालिका की छोटी सी गलती से उसके सारे जीवन को दुःख में डाल देना....।'

तब राजा ने कड़क कर कहा-चुप रहो, तुम लोगों से हम कुछ परामर्श नहीं ले रहे पुनः क्यों बोलते ही चले जा रहे हो?

फिर भी साहस कर एक मंत्री ने कहा–

'महाराज! अभी आप आवेश में आकर नीतिकारों का वचन भूल रहे हैं। देखो, 'बालक, वृद्ध, स्त्री, निर्बल, पशु, अधीनस्थ, शरणागत एवं पीठ दिखाकर भागने वालों के प्रति क्षत्रियों का क्रोध करना अनुचित है.....।'

राजा ने बीच में ही बात काटकर कहा–

'बस, मैंने जो कह दिया, वह अटल है...अच्छा, श्रीपाल आप लोग हमारे साथ शहर में चलें।'

वे लोग राजा के साथ आ गये। राजा ने महल में जाकर रानी से यह समाचार सुनाया। तब वे आश्चर्यचकित हो राजा का मुख ही देखती रह गईं। राजा ने खुलासा करते हुए मैना के साथ हुये कर्मवाद के विसम्वाद को बतलाकर कहा–

'मैं इस पुत्री को इसके कर्मों का मजा चखाऊँगा।'

उस समय रानी का धैर्य टूट गया। वे रो पड़ीं और रुँधे कंठ से बोली–

'आपने यह क्या सोच लिया? इतना बड़ा अनर्थ देखकर मैं कैसे जीवित रहूँगी?'

रानी के सब कुछ समझाने के बाद भी राजा नहीं माने और वे उठकर अलग चले गये। मैनासुंदरी को बुलाकर बोले–

'पुत्रि! देख, मैं तेरे कर्म सिद्धांत से कुपित हो तेरा कुष्ठी के साथ विवाह कर दूँगा। देख, अभी भी तू मेरा कहना मान ले और अपनी इच्छानुसार वर का चयन कर ले अन्यथा मैं तेरे भाग्य की कड़ी परीक्षा लेऊँगा।'

राजा बोलते ही गये। मैनासुंदरी चुपचाप सुनती रही। पुनः धैर्य के साथ बोली–

'पिताजी! आपने जो भी निर्णय लिया है मुझे स्वीकार है। मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि शुभ कर्म के उदय से अनिष्ट वस्तु भी इष्ट हो जाती है और अशुभ कर्म के उदय से इष्ट भी अनिष्ट अशोभन हो जाते हैं ....।'

पुनः कर्म की ही पुष्टि सुनकर राजा पुहुपाल ने कहा–

'ठीक है, अब मैं देखूँगा तेरा कर्म सिद्धांत!.....'

राजा ने ज्योतिषी को बुलाकर मुहूर्त पूछा, ज्योतिषी ने कहा–

'महाराज! विवाह का मुहूर्त तो आज ही सबसे श्रेष्ठ है। ऐसा मुहूर्त तो अगले तीस वर्ष में भी आने की संभावना नहीं है। आज के मुहूर्त में रवि, सोम और गुरु तीनों ग्रह वर तथा कन्या के लिए अत्यन्त शुभप्रद हैं।'

मुहूर्त सुनकर राजा प्रसन्न हुए और पंडित को दक्षिणा देने लगे। पंडित ने कहा-

'महाराज! आपकी इस दक्षिणा को मैं नहीं ले सकता।

ऐसे अयोग्य विवाह से भला किसको प्रसन्नता है? परन्तु क्या किया जाए? कन्या का भाग्य ही जब ऐसा है, तब आपको क्या दोष दिया जाए?'

इत्यादि प्रकार से ज्योतिषी पंडित के बहुत कुछ समझाने के बावजूद राजा टस से मस नहीं हुए।

प्रजा के प्रमुख लोग भी राजा को समझा चुके थे। शहर में घर-घर में यही चर्चा हो रही थी।

'अहो! राजा क्या कर रहे हैं? ऐसी अबोध बालिका के साथ ऐसा अन्याय?....'

किन्तु राजा ने पुनः सबको डाँटकर कहा–

'मैं जो भी कर रहा हूँ, बिल्कुल ठीक है। क्या तुम लोगों ने नहीं सुना है कि–

सिंहलगन, कदली फलन, नृपति वचन इकबार।
त्रिया तेल अमीर हठ, चढ़े न दूजी बार।।

फिर भी सब लोग विरोध करते ही रहे और विवाह की बेला आ गई। राजा ने श्रीपाल को विधिवत् संकल्प करके कन्यादान दे दिया। माता निपुणसुंदरी और बहन सुरसुंदरी बहुत ही रो रही थीं। विदाई के समय उनकी छाती फटी जा रही थी किन्तु मैनासुंदरी की आँखों में एक बूँद भी अश्रु नहीं थे प्रत्युत् वह यही कह रही थी कि– 'आप लोग अब मेरे पतिदेव को कोढ़ी-कोढ़ी कहकर मेरे मन को दुःखी न करें। कुलीन कन्या के लिए पति देवता है, वह चाहे जैसा क्यों न हो।'

मैनासुंदरी माँ और बहन को भी समझा रही थी कि–

'हे मातः! यदि मेरा भाग्य प्रतिकूल था तो माता-पिता द्वारा उचित अच्छे वर के साथ विवाह होने के बाद भी पति रोगी हो सकता था और यदि मेरा भाग्य अनुकूल होगा तो ये आपके जामाता भी नीरोग हो जायेंगे। आप इतनी चिंता क्यों करती हैं?...'

इत्यादि शोकपूर्ण वातावरण में ही मैना की विदाई हो गई और राजा श्रीपाल अपनी पत्नी तथा इष्ट मित्र-वीरों सहित उज्जैन के बगीचे में ही आकर ठहर गये।

राजा ने विवाह में भरपूर राजकीय वस्तुएँ दीं और मैना की विदाई कर दी थी किन्तु अब राजा का हृदय टूट गया और वे शिर धुन-धुनकर पश्चात्ताप करने लगे और रोने लगे–

'हाय! मैंने यह क्या कर डाला?....मेरी बुद्धि कैसी मारी गई थी? मेरी प्यारी पुत्री कोढ़ी के साथ कैसे अपना जीवन बितायेगी?....'

किन्तु 'अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत।' इस कहावत के अनुसार अब भला क्या हो सकता था?

(5)

मैनासुंदरी अपने पति की सेवा में अहर्निश लगी रहती थी। घाव धोकर औषधि लगाती, पट्टी बाँधती और प्रकृति के अनुकूल भोजन कराती थी। वह रंचमात्र भी ग्लानि नहीं करती थी। कभी-कभी अनेक तत्त्व चर्चा और धर्म कथाओं

के द्वारा पति का मन अनुरंजित किया करती थी। कभी-कभी रात्रि में भी नींद न लेकर सेवा में संलग्न रहती थी। इतनी सेवा परायणता देखकर एक दिन श्रीपाल ने कहा–

"प्रिये! तुम अत्यंत कोमलांगी हो, बचपन में कभी भी इतना श्रम नहीं किया होगा और फिर मेरा शरीर इतना घृणित, दुर्गंधित है और यह मेरा रोग संसर्ग से हो जाता है अतः आप कुछ दिन मेरे से दूर ही रहा करो। जब मेरे असाता का उदय मिट जायेगा, तब आप निकट में बैठो।"

इतना सुनकर मैना को बहुत ही दुःख हुआ, उसने कहा-

"हे नाथ! आपने आज ऐसे शब्द क्यों कह दिये? क्या कुलीन महिलायें रोग, कष्ट आदि में पति से दूर रह सकती हैं? मेरा तो कर्तव्य यही है कि हर समय आपकी सेवा करना, आपके शरीर और मन के अनुकूल कार्य करना। यदि मेरे असाता कर्म का उदय होगा तो मुझे भी रोग हो जायेगा, नहीं तो संसर्ग मात्र से नहीं होगा। आपको मुझे कभी भी नहीं रोकना चाहिए। हाँ, यदि कुछ प्रतिकूलता हुई हो तो अवश्य कहिये।"

मैनासुंदरी के युक्तिपूर्ण वचन सुनकर श्रीपाल का हृदय भर आया और वे कहने लगे–

"लगता है कि अब मेरे पुण्य का उदय आ गया है तभी तो तुम जैसी राजपुत्री विदुषी रानी मिली है। आपकी भक्ति और सेवा से तो मेरा बहुत कुछ कष्ट अपने आप ही दूर हो जाता है।...."

दूसरे दिन मैनासुंदरी ने अपने पतिदेव के साथ परामर्श करके जिनमंदिर में जाकर दर्शन किया, भगवान की पूजन की पुनः वहीं पर विराजमान मुनिराज के सान्निध्य में पहुँचकर उनकी वंदना करके पास में बैठ गये, गुरु से धर्मोपदेश सुना पुनः मैनासुंदरी ने प्रार्थना की कि–

"हे भगवन्! तीव्र असाता के उदय से मेरे पतिदेव कुष्ठ रोग से दुःखी हैं, इस रोग को दूर करने का उपाय बतलाइये।"

मैनासुंदरी की प्रार्थना सुनकर महामुनि बोले–

" हे पुत्रि! जिनेन्द्रदेव की भक्ति के प्रसाद से संसार में कुष्ठ आदि रोग तो क्या, जन्म-मरण के रोग भी नष्ट हो जाते हैं। इसलिये तुम दृढ़ श्रद्धा के साथ आष्टान्हिक पर्व में नंदीश्वरव्रत करके सिद्धचक्र की आराधना करो। इस व्रत और सिद्धचक्र के प्रभाव से तुम्हारे पति का कुष्ठ सर्वथा नष्ट हो जायेगा।"

मैनासुंदरी ने गुरु के वचनामृत सुनकर प्रसन्न होकर पुनः पूछा–

"हे भगवन्! आप इस व्रत की पूर्णविधि बतला दीजिये।"

मुनिराज ने कहा–

"बेटी! कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ इन तीनों महीनों में शुक्लपक्ष की अष्टमी से लेकर पूर्णिमापर्यंत नंदीश्वर पर्व मनाया जाता है। इन दिनों देवगण यहाँ से आठवें नंदीश्वर द्वीप में जाकर बराबर आठ दिनों तक अखंड पूजा करते हैं। तुम इन्हीं पर्व के दिनों में नंदीश्वर व्रत (अष्टान्हिक व्रत)

धारण करो और विधिवत् सिद्धचक्र विधान की आराधना करो। यह व्रत वर्ष में तीन बार आता है और आठ वर्ष तक किया जाता है। व्रत के दिनों में शक्ति हो तो आठ उपवास अन्यथा बेला या एकांतर से अथवा एक भुक्तिपूर्वक भी जैसी शक्ति हो उसी के अनुसार उत्तम, मध्यम अथवा जघन्य रीति से व्रत करना चाहिए। जब व्रत पूर्ण हो जाए तो उद्यापन करना चाहिए।''

मैनासुंदरी और श्रीपाल ने व्रत विधि समझकर उन्हीं गुरुदेव के पादमूल में इस व्रत को सहर्ष ग्रहण कर लिया और उनकी पुनः पुनः वंदना करके अपने स्थान पर वापस आ गये।

कुछ ही दिनों बाद कार्तिक महीने का आष्टान्हिक पर्व आ गया। मैनासुंदरी ने विधिवत् सिद्धचक्र विधान का अनुष्ठान किया और बराबर आठ दिन व्रत किया। वह प्रतिदिन स्नानादि से शुद्ध हो मंदिर में जाकर जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा का अभिषेक करती थी[1]। पुनः अष्टद्रव्य से पूजन विधान करती थी। अनंतर गंधोदक लाकर अपने पति के शरीर पर लगाती थी और उसी गंधोदक को 700 वीरों के शरीर पर भी छिड़क देती थी जो कि कुष्ठ रोग से ग्रसित थे। धीरे-धीरे इन लोगों के असाता कर्म उदय मंद होने लगा और रोग घटने लगा। यहाँ तक कि इस व्रत के प्रभाव से केवल आठ ही दिनों में राजा श्रीपाल का शरीर एकदम कंचन जैसा सुंदर हो गया। देखने

1. अथैकदा सुता सा च सुधी मदनसुंदरी। कृत्वा पंचामृतस्नानं। जिनानां सुखकोटिदम्।। (श्रीपालचरित्र, बृहन्नेमिचंद्रकृत, पृ.-6)

वाला कोई यह भी नहीं कह सकता था कि इन्हें कुष्ठ रोग हुआ था। साथ ही 700 वीर योद्धाओं के शरीर भी स्वस्थ हो गये। यह अतिशय देखकर राजा श्रीपाल कहने लगे–

''अहो! इस व्रत का कितना बड़ा माहात्म्य है कि जिसने इतने दिनों के असाध्य भी भयंकर कुष्ठ रोग को मात्र आठ दिन में जड़मूल से खत्म कर दिया।''

इसके उपरांत प्रसन्न चित्त हुए राजा श्रीपाल भी प्रतिदिन मंदिर में जाकर भगवान की भक्ति, पूजा और स्तुति करते थे तथा मुनिराज के चरणों के निकट बैठकर उनकी भी अष्टद्रव्य से पूजा करके उनके श्रीमुख से धर्मोपदेश सुना करते थे। मैनासुंदरी भी अब बहुत ही प्रसन्न थी और प्रतिदिन जिनपूजा, पात्रदान आदि करके अपने पातिव्रत्य आदि गुणों से पति को प्रसन्न रखती थीं।

कुछ ही दिनों के बाद राजा श्रीपाल अपने महल में सुखपूर्वक बैठे हुए थे कि अकस्मात् द्वारपाल ने आकर कहा–

''हे नरश्रेष्ठ! आपकी माता बहुत ही परिकर के साथ यहाँ पर आई हुई हैं।''

श्रीपाल इतना सुनते ही अपने आसन से उठ खड़े हुए और मैनासुंदरी से बोले–

''प्रिये! मेरी माता यहाँ आ गई हैं अतः हमें उनका स्वागत करके उन्हें आदर से घर में लाना है।''

मैनासुंदरी स्वयं सर्वगुणसंपन्न थी और समयोचित कर्तव्य को समझती थी अतः उसने शीघ्र ही हाथ में मंगल कलश लिया और महल के बाहर आ गई। राजा श्रीपाल के साथ

मैनासुंदरी ने सासु का स्वागत किया। श्रीपाल के साथ ही माता के चरणों में विनय से प्रणाम किया पुनः पुनः उनके चरण छुये और लज्जा से मस्तक नीचा कर अपनी सास के एक तरफ खड़ी हो गई। श्रीपाल ने भी माता के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया था। तब माता कुंदप्रभा ने बड़े ही स्नेह से उसे उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया। चिरवियोग के बाद तथा दुःख से सुख में मिलने से माता के नेत्रों में आँसू आ गए। राजा श्रीपाल माता को, और साथ में आए अपने अनेक प्रमुख लोगों को साथ लेकर अंदर महल में आ गए। माता घर में आकर चारों तरफ का सुंदर वातावरण देखकर प्रसन्न होती है और बैठकर श्रीपाल से सारी बातें पूछती है। श्रीपाल भी घर से निकलने से लेकर उस दिन तक की सारी अपनी सुख-दुख मिश्रित बातें सुना देते हैं और पुनः कहते हैं–

'हे मातः! मेरे कोई विशेष ही पुण्य का उदय था कि जिससे राजा पुहुपाल ने अपनी पुत्री के कर्म सिद्धांत की बातों से चिढ़कर मुझ जैसे कोढ़ी को अपनी कन्या विवाह दिया और उस सुकुमारी ने मेरी जो सेवा की है सो मैं क्या कहूँ?.....इसके पश्चात गुरु की कृपा से सिद्धचक्र का अनुष्ठान करके मुझे स्वस्थता प्रदान की है।''

इत्यादि प्रकार से मैनासुंदरी की प्रशंसा सुनकर माता कुंदप्रभा ने बार-बार उसके मस्तक पर हाथ फेरकर शुभाशीर्वाद दिया–

'पुत्रि! तू आठ हजार रानियों की पट्टरानी हो। कोटिभट श्रीपाल भी चिरंजीव रहे और तेरे पिता पुहुपाल भी सदा यश

वैभव से समृद्धिमान् हों।'

माता के आशीर्वाद को पाकर दोनों प्रसन्न हुए और बोले–

'यह सब आपके ही आशीर्वाद का सुफल है।'

पुनः श्रीपाल ने पूछा–

'हे मातः! आपको मेरे यहाँ रहने का पता कैसे मिला?'

माता ने कहा–

'हे पुत्र! तेरे वियोग से दुःखी हो मैं रात-दिन चिंता किया करती थी, एक दिन मैंने मंदिर में विराजमान अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा–

'भगवन्! मेरा पुत्र आज किस स्थिति में है? सुखी है या दुःखी?'

मुनिराज ने कहा–

'वह बहुत ही सुखी है। उसके साथ उज्जैन के राजा ने अपनी कन्या विवाह दी थी। वह कन्या सम्यग्दृष्टि और शील शिरोमणि सती है। उसने व्रत और सिद्धचक्र की आराधना के बल से श्रीपाल के तथा सभी के कुष्ठ रोग को दूर भगा दिया है।'

मुनिराज के मुख से यह सब सुनकर मेरी इच्छा तेरे से मिलने की हो गई और मैं तेरे काका वीरदमन से अनुमति लेकर यहाँ आ गई।'

इतना सुनकर श्रीपाल प्रसन्न हुए। मैनासुंदरी ने भी सासु को स्नान आदि से निवृत्त कराकर भोजन कराया और उनके चरणों को दबाकर सेवा करके उनका मन प्रसन्न किया। इसी प्रकार प्रसन्नपूर्ण वातावरण में ये सभी लोग रह रहे थे।

(6)

राजा पुहुपाल के हृदय में मैनासुंदरी के कुष्टीपति को याद कर गहरी वेदना हुआ करती थी। यद्यपि वे रानी से अपनी बात नहीं कह पाते थे क्योंकि रानी के और सामन्त मंत्रियों के मना करने के बावजूद उन्होंने अपनी प्यारी पुत्री को कुष्ठी वर के साथ विवाहा था फिर भी इस चिंता से राजा का शरीर दुर्बल हो गया और भोजनपान में भी अरुचि होने लगी। तब एक दिन रानी निपुणसुंदरी ने विनय से पूछा–

'स्वामिन्! आपकी आंतरिक अशांति का क्या कारण है?'

राजा ने भी अपने हृदय की व्यथा को कह सुनाया, वे बोले–

'प्रिये! मैनासुंदरी के बालहठ पर कुपित हो मैंने महान् अनर्थ कर डाला है अब मेरे मन को कथमपि चैन नहीं है। वह सुकुमारी पुत्री उस कुष्ठी के साथ आज कहाँ होगी? कैसे अपना समय निकालती होगी?

इतना कहते हुये राजा के नेत्रों से अविरल अश्रु की धारा प्रवाहित हो गई। रानी निपुणसुंदरी अपने नाम के अनुसार ही पातिव्रत्य आदि गुणों की खान थी और विवेक संपन्न थी। उन्होंने उस समय पति के दुःख को, शोक को बढ़ाना उचित नहीं समझा प्रत्युत् नीतिपूर्ण मधुर वाक्यों से सान्त्वना देते हुए कहा–

"हे स्वामिन्! संसार में पुत्र-पुत्रियों को सुखी-दुःखी करने वाले हम माता-पिता निमित्तमात्र ही हैं। उनके भाग्य में जो

होता है, सो होकर ही रहता है। मैनासुंदरी ने पूर्व भव में जैसा कर्म संचित किया था और जिसके साथ उसका संयोग होना था सो भला कैसे टल सकता था? अतः अब आप चिंता छोड़कर अपने स्वास्थ्य की और अपने राज्य की संभाल कीजिये। यह कर्म बड़ा ही बलवान है। यह कभी राजा को रंक और रंक को भी राजा बना देता है। इसके आश्रित हुए संसारी प्राणी अनेक प्रकार के नट जैसे स्वांग धर-धर घूम रहे हैं।'

इत्यादि प्रकार से समझाते हुए रानी ने पति से यह भी निवेदन किया कि–

अब शांति के लिए प्रातः श्री जिनमंदिर में चलकर अपने को जिनेन्द्रदेव के चरणों की पूजा करनी चाहिए और किन्हीं दिगम्बर मुनिराज के चरण सानिध्य में बैठकर मन की व्यथा कहकर कुछ मैना के भविष्य के विषय में पूछना चाहिए। कदाचित् कोई अवधिज्ञानी मुनि मिल गये तो अपने को मैना के भविष्य का हाल मालूम हो जावेगा।'

स्वयं रानी को मैना के विषय में राजा से भी अधिक चिंता थी किन्तु उन्होंने समय पर कर्तव्य का पालन कर पति के शोक को हल्का किया और प्रातः स्नान आदि से निवृत्त हो मंदिर पहुँची, भगवान के दर्शन कर वहीं मंदिर में विराजमान मुनिराज के निकट पहुँचकर उन्हें नमोऽस्तु किया और पास में ही बैठ गईं। ज्यों ही वे गुरुदेव से कुछ पूछना चाहती थीं कि उनकी दृष्टि पास में ही बैठे हुए एक युवा दंपत्ति पर पड़ी। उन्होंने तत्क्षण ही पहचान लिया कि–

'यह मेरी पुत्री मैनासुंदरी है।'

'किन्तु यह पुरुष इसके साथ कौन है?'

वे उसे नहीं पहचान सकीं। रानी का मन एकदम आकुल-व्याकुल हो उठा और उनके मन में अनेक भाव लहरें उठने लगीं–

'ओह! यह क्या हुआ? मेरी सुशीला कन्या मैना ने यह क्या किया? उस कुष्ठी पति को छोड़कर आज यह यहाँ किसके साथ बैठी है?...'

रानी के मुख पर विषाद और क्रोध की रेखाएँ खिंच गईं। वह घृणा, दुःख और क्रोध भरी दृष्टि से उन्हें देखने लगी और उनकी आँखों से बखस ही अश्रुधारा प्रवाहित हो चली।

इसी मध्य मैनासुंदरी ने अपनी माता के चेहरे के विकृतरूप को देखकर तत्काल ही उनके अंतर्मन को समझ लिया। उसने तत्क्षण ही उठकर माता के चरणों में प्रणाम किया किन्तु माता ने उपेक्षा से मुख फेर लिया, यह देखकर वह दुःखी न होकर अपनी माता का संदेह निवारण करते हुए बोली–

'हे मातः! इधर देखिए और मुझे आशीर्वाद दीजिए। ये आपके ही जामाता श्रीपाल हैं जो कि विवाह के समय कुष्ठरोग से पीड़ित थे। इन्हीं के साथ आपने विधिपूर्वक मुझे विवाहा था। हे माँ! धर्म के प्रभाव से अशुभ कर्मों के दूर हो जाने से आज इनका सुवर्ण शरीर दिख रहा है।'

इतना सुनकर रानी के मन में कुछ शांति हुई किन्तु उनका संदेह पूर्णतया नहीं निकला था अतः वे बोलीं–

'मैना तू क्या कह रही है? यह वही कुष्ठी श्रीपाल है, भला ऐसा कैसे मान लिया जाए?'

इतना सुनते ही श्रीपाल बोले–

'माताजी! आप अपने हृदय के भ्रम को दूर कीजिए। आपकी पुत्री मैनासुंदरी महासती शिरोमणि है तथा सम्यक्त्व, शील आदि गुणों की खान है। आपने ऐसी पुत्री को जन्म देकर अपने वंश को धन्य कर दिया है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि मैं वही श्रीपाल हूँ और मेरे सात सौ योद्धा भी कुष्ठ रोग से मुक्त हो चुके हैं। देखिए, अभी एक अंगूठे में किंचित् कुष्ठ शेष है जो कि मेरे सर्वांग के कुण्ठ का प्रमाण है।'

इतना सुनकर और श्रीपाल के एक अंगूठे में किंचित् कुष्ठ को देखकर रानी को विश्वास हो गया कि–

'ये ही मेरे जामाता श्रीपाल हैं।'

तब उन्होंने स्नेह से आर्द्र हो पुत्री को अपने हृदय से लगा लिया। अब उनके आँखों में प्रेम के आँसू आ गये। कंठ रुँध गया पुनः वे गद्गद स्वर से पूछने लगीं–

'बेटी! तू पुण्यशालिनी है। मुझे बता कि किस उपाय से तूने श्रीपाल के कुष्ठ को दूर किया है?''

तब राजा श्रीपाल ने ही कहना शुरू किया–

'माता! तुम्हारी पुत्री ने पहले तो अपने कोमल हाथों से मेरे घावों की बहुत कुछ मलहम पट्टी की, अंत में श्रीगुरु के मुख से उपदेश प्राप्त कर श्री सिद्धचक्र विधान का अनुष्ठान करके श्री जिनेन्द्र देव के अभिषेक का गंधोदक मेरे शरीर पर लगाया और मेरे साथियों के शरीर पर भी छिड़का। उस पवित्र गंधोदक के प्रसाद से ही हम सभी का कुष्ठ रोग नष्ट हो गया और हम लोग पूर्ववत् स्वस्थ हो गये हैं।'

इतना सुनकर रानी के हर्ष का पार नहीं रहा और वे पुनः पुनः पुत्री और जामाता को आशीर्वाद देकर धर्म की प्रशंसा करते हुए तत्क्षण ही अपने महल में वापस आ गयीं। राजा पुहुपाल को सारा समाचार सुना दिया। उसी क्षण राजा पुहुपाल भी पुत्री से मिलने के लिए आतुर हो उठे और जिन मंदिर आ गये। वहाँ आकर श्री जिनेन्द्रदेव की वंदना करके गुरु को नमस्कार किया। मैनासुंदरी भी पिता को देखते ही उठकर पास में आई और विनय भाव से पिता को प्रणाम किया। पिता ने स्नेहवश पुत्री को हृदय से लगा लिया और उनके नेत्रों से पश्चात्ताप से मिश्रित अश्रु गिरने लगे। इतने में श्रीपाल ने भी श्वसुर को प्रणाम किया। राजा ने श्रीपाल को भी अपने गले से लगाकर स्नेह व्यक्त किया पुनः पुत्री से बोले–

'बेटी मैना! मैंने तुम्हारे साथ जो अन्याय किया है उससे मेरा हृदय सदैव पश्चात्ताप की अग्नि से झुलसता रहता है। मैं इस अपने अपराध की तेरे से क्षमा चाहता हूँ।

पुत्री मैना ने कहा–

'पूज्य पिताजी! आप यह क्या कह रहे हैं? भला इसमें आपका क्या दोष? मेरे पूर्वकृत कर्मों का दोष था कि जो उस समय मेरे पति को कुष्ठ रोग का प्रकोप हुआ था।'

इत्यादि अनेक युक्तिपूर्ण वचनों से मैना ने पिता को धैर्य प्रदान किया। अनंतर राजा पुहुपाल ने मुनिराज से प्रश्न किया–

'हे भगवन्! श्रीपाल का गलित कुष्ठ किस प्रकार दूर हुआ

है? कृपया आप अपने दिव्यज्ञान से मेरा समाधान करें?'

मुनिराज ने भी राजा से कहना शुरू किया–

'हे राजन्! आपकी पुत्री मैनासुंदरी सम्यग्दृष्टि है। इसने गुरुमुख से इस रोग की शांति का उपाय सिद्धचक्र विधान समझकर विधिवत् उसका अनुष्ठान करके अपने पति को स्वस्थ तो किया ही है, साथ ही जैनधर्म के महत्त्व को भी प्रगट कर दिखाया है।'

राजा ने गुरु के मुख से सारा वृत्तांत सुनकर राजा श्रीपाल का और मैनासुंदरी का बहुत ही सम्मान किया पुनः धर्म में श्रद्धालु होते हुए अपने को सौभाग्यशाली अनुभव करने लगे। मैनासुंदरी ने पिता को साक्षात् धर्म का फल दिखलाने के लिए पुनरपि सिद्धचक्र का अनुष्ठान करके अपने पति के अंगूठे में शेष रहे किंचित् मात्र भी कुष्ठ में गंधोदक लगाया कि उसी क्षण वह अंगूठा भी कंचन जैसा चमकने लगा और वह शेष रहा कुष्ठ भी निर्मूल हो गया। इस प्रत्यक्ष चमत्कार को देखकर राजा ने कर्म सिद्धांत को अच्छी तरह स्वीकारा और धर्म के प्रति बहुत ही अनुरागी बन गए।

(7)

राजा श्रीपाल मैनासुंदरी के साथ उज्जैन में सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत कर रहे थे, एक बार रात्रि में श्रीपाल की निद्रा भंग हो गई और वे गहरी चिंता में निमग्न हो गए। इसी मध्य मैनासुंदरी की निद्रा भी भंग हो गई और उसने पति के पैर दबाते हुए विनय से प्रश्न किया–

'स्वामिन्! आज आपको आकस्मिक ही क्या चिंता हो रही है? क्या मेरे पिता के द्वारा कुछ कटु अनुभव आया है या मेरे से कुछ अपराध हुआ है? अथवा आपको अपनी जन्मभूमि की याद आ रही है? जो भी हो, सो आप मुझे स्पष्ट करने का कष्ट करें?'

मैनासुंदरी के इन कोमल और मधुर जिज्ञासा भरे प्रश्नों को सुनकर श्रीपाल ने कुछ क्षण विचार कर कहा–

'प्रिये! मेरी चिंता का ऐसा कोई विशेष कारण नहीं है। आपके पिता का जो कुछ और जितना मुझे स्नेह मिल रहा है, वह विशेष ही कहा जाएगा। फिर भी मेरी चिंता का जो कारण है, वह मैं तुम्हें बताता हूँ। मुझे यहाँ सब लोग राज-जामाता के नाम से ही जानते हैं। मेरे पिता के नाम का कोई उल्लेख नहीं करता। पुत्र से यदि पिता का नाम लुप्त हो जाए, तो क्या उसे 'पुत्र' कहा जा सकता है? वास्तव में वह पुत्र कहलाने का अधिकारी नहीं है। देखो, पुत्र और पुत्री में केवल इतना ही अंतर है कि पुत्री अन्य कुल की वृद्धि करती है और पुत्र अपने पिता के वंश को बढ़ाता है। पुत्र यदि पुत्री के समान ही श्वसुरालय में रहने लगे तो वह कुपुत्र है, निर्लज्ज है। अब हमें यहाँ एक पल भी रहना एक वर्ष के समान दिख रहा है।'

पति की बातों को सुनकर मैनासुंदरी प्रभावित हुई और कहने लगी–

'स्वामिन्! आप सच कह रहे हैं, पुरुष के श्वसुरगृह में

निवास को भला कौन उत्तम कहेगा? आपका विचार अति उत्तम है चूँकि पुत्र को 'कुलदीपक' कहा गया है अतः आप अब अपने देश चलकर अपना राज्य संभालिए।'

मैनासुंदरी के अपने अनुकूल वचन सुनकर श्रीपाल को बहुत ही संतोष हुआ और मन ही मन उसके विवेक की सराहना की पुनः बोले–

'प्रिये! आपने बहुत ही सुंदर कहा है परन्तु तुम्हें यह ज्ञात होना चाहिए कि क्षत्रिय वीर कभी किसी के आगे हाथ नहीं पसारते। याचना उनके लिए मरण के समान है। मैंने अपने चाचा को यद्यपि अपने अस्वस्थ रहने तक ही राज्य सौंपा था फिर भी आज यदि मैं पहुँचकर उनसे राज्य माँगूँ तो क्या वे सहजभाव से दे देंगे?.....अथवा कोई उदार पुरुष हो दे भी देवें तो क्या उसे स्वीकर कर लेना उचित होगा? यदि ऐसा किया तो अपना पराक्रम एवं बाहुबल दिखाने का अवसर कैसे प्राप्त होगा? कहने का मतलब यही है कि न तो मैं चाचा से राज्य माँग ही सकता हूँ और यदि कदाचित् वो दे भी दें तो न मैं उसे स्वीकार ही कर सकता हूँ।

मैंने तो यह निश्चय कर लिया है कि अब मैं अन्यत्र जाकर अपने बाहुबल से राज्य और ऐश्वर्य प्राप्त करुँगा। हे बल्लभे! मैं तुमसे यही कहना चाहता हूँ कि मेरी अनुपस्थिति में तुम अपनी सास की सेवा तन, मन से करना और नित्य ही देवपूजा, गुरुवंदना आदि धर्म कार्यों में अपने समय को बिताना। कभी किसी प्रकार की चिंता नहीं करना।'

इतना सुनते ही मैना का हृदय आकस्मिक वियोग की व्यथा से आहत हो गया। उसने जैसे-तैसे अपने धैर्य को बटोरकर कहा–

'स्वामिन्! मैंने तो स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि आपके वियोग का दुःख कभी देखने को मिलेगा। आप आज सहसा इतने कठोर कैसे हो गए? मैं आपके वियोग में कैसे जीवित रहूँगी?'

मैनासुंदरी के ऐसे मोहयुक्त वचन सुनकर श्रीपाल ने कहा–

'प्रिये! तुम विवेक सम्पन्न हो, तुम्हें मैं क्या अधिक समझा सकता हूँ। इस संसार का मूल कारण तो मोह ही है। यह मोह मनुष्य को कर्तव्य पथ से च्युत कर देता है अतः आपको ऐसा मोह कथमपि नहीं शोभता। देखो, मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि आज से ठीक बारहवें वर्ष के बाद इस अष्टमी के दिन मैं तुमसे आकर पुनः मिलूँगा। इसमें किसी प्रकार का अंतर नहीं आ सकता।'

मैनासुंदरी ने यद्यपि अनेक प्रकार से पति के साथ चलने का अनुरोध किया किन्तु श्रीपाल ने उस बात को नहीं स्वीकारा। जब मैना को धैर्य धारण करने के सिवाय और उपाय नहीं दीखा, तब वह बोली–

'हे नाथ! यदि आप बारह वर्ष के पूरे होने पर अष्टमी को नहीं आए तो नवमी के दिन ही प्रातः मैं आर्यिका की दीक्षा ले लूँगी।'

यह सुनकर श्रीपाल ने हँसकर कहा–

'ठीक है, यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नहीं आया तो आपको दीक्षा लेने का पूर्ण अधिकार है।'

इत्यादि प्रकार से जाने का निर्णय हो जाने के बाद मैना ने अपने स्वभाव के अनुसार कहा–

'यद्यपि आप स्वयं प्रबुद्ध हैं फिर भी मेरी यही प्रार्थना है कि प्रवास में आप कहीं पर क्यों न रहें, देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति को अपने हृदय से दूर न करें और सतत सिद्धचक्र मंत्र का स्मरण करते रहें। प्रत्येक कार्य के प्रारंभ में पंचपरमेष्ठी के महामंत्र को जप लेवें। अपने माता-पिता और बड़े जनों के वचनों को सदा स्मरण में रखें। चाटुकार लोगों पर विश्वास न करें और अपने कुल की मर्यादा के विरुद्ध कोई भी कार्य न करें।'

इत्यादि रीति से अनेक शिक्षास्पद वचनों से मैना ने पति के मन को संतुष्ट किया किन्तु पुनः उसके मन में गहरी वेदना होने लगी और सोचने लगी कि-

'अहो! पतिदेव के बिना मैं इस महल में बारह वर्ष का समय कैसे निकालूँगी?'

वह अधीर हो उठी, उसकी आँखों में आँसू आ गए और बहुत कुछ रोकने पर भी नहीं रुक सके। तब भावावेश में आकर उसने कहना शुरू किया–

'स्वामिन्! अब तक मैं समझ रही थी कि आप मुझसे परिहास कर रहे हैं। क्या आप सचमुच में परदेश जाने को तैयार हैं? आपका यह निर्णय भला मैं कैसे देख सकूँगी?

अतः आपको अपने देश चलने के लिए कुछ अन्य ही उपाय सोचना चाहिए।....'

इस प्रकार मैनासुंदरी के वचन सुनकर श्रीपाल को ऐसा लगा कि–

'मेरी भार्या मैनासुंदरी मोह के वश होकर अब मेरे निर्णय में बाधक बन सकती है।'

अतः उन्होंने बनावट क्रोध से आकृति बिगाड़ कर उच्चस्वर से कहा–

'लोग सच कहते हैं कि स्त्रियाँ जो हठ पकड़ लेती हैं, वह मुश्किल से ही छोड़ पाती हैं। मैंने तुम्हें उन साधारण स्त्रियों से बढ़कर विशेष बुद्धिमती ही समझा था लेकिन आज तो तुम भी उन अविवेकी महिलाओं के सदृश ही दिख रही हो। भला अब रोकने की बात करना कहाँ तक उचित है?'

पति के द्वारा इस प्रकार भर्त्सना के वचन सुनकर मैनासुंदरी के दिल पर गहरा आघात पहुँचा। वह धैर्य से अपने अश्रुओं को रोककर एक तरफ खड़ी हो गई। तब श्रीपाल ने करुणार्द्र मन से अनेक वचनों द्वारा मैनासुंदरी को पुनः समझाया और कहा–

'प्रिये! अब सर्व चिंताओं को छोड़कर हमें अपने अभीष्ट कार्य के लिए सहर्ष अनुमति प्रदान करो। तुम्हारी यह स्थिति मेरे परदेश प्रवास में विघ्न करने वाली हो सकती है। तुम सम्यक्त्व, विवेक और शील की साक्षात् मूर्ति हो। तुम्हें इस अवसर पर अपने धैर्य का परिचय देना चाहिए। यद्यपि कुछ दिन के लिए वियोग है फिर भी वह सुखद भविष्य के लिए ही है।'

इतना सुनकर मैनासुंदरी ने जैसे-तैसे अपने मन को संतोष कराकर पति के चरणों को नमस्कार किया और जाने के लिए अनुमति देते हुए बोली–

'आपका यह प्रवास सर्व मनोरथों को सफल करने वाला हो और जिनदेव की कृपा से आप पुनः हमारे से आकर मिलें।'

श्रीपाल मैनासुंदरी से आज्ञा लेकर माता के पास पहुँचे। उन्हें प्रणाम कर अपने परदेश जाने की सारी बात समझाई और माता की अनेक-अनेक शिक्षाओं को ग्रहण कर जाने को उद्यत हुए। तब माता ने स्नेह से पुत्र के मस्तक पर हाथ रखकर शुभाशीर्वाद दिया और वापस आने तक के लिए मंगल कामना करते हुए श्रीपाल के मस्तक पर दूध, दही, अक्षत रखे, ललाट पर कुंकुम का तिलक लगाया। श्रीपाल ने भी माता को प्रणाम कर अनंतर अपने सभी स्वजन लोगों से आज्ञा लेकर रात्रि के अंतिम प्रहर में उत्साह और आनंद के साथ पंचपरमेष्ठी का स्मरण कर घर से प्रस्थान कर दिया।

(8)

श्रीपाल अपने हाथ में चंद्रहास धारण कर पैदल ही चले जा रहे थे। अनेक वन, पर्वत, गुफा, नदी, तालाब, ग्राम, नगर आदि का अतिक्रमण करते हुए वे वत्सनगर में आ गये। वहाँ की रमणीय शोभा को देखते हुए उस नगर के वन में पहुँचे। वहाँ देखा कि एक वृक्ष के नीचे एक पुरुष कुछ मंत्र जप रहा है किन्तु उसके मुखमंडल पर कुछ उदासीनता की

रेखा है। पास में जाकर पूछा–'मित्र! तुम किस मंत्र की सिद्धि कर रहे हो? और तुम्हें इसमें सफलता न मिलने का क्या कारण है?'

श्रीपाल के मधुर शब्द सुनकर वह सहसा चकित हुआ और जाप्य पूर्ण कर बोला–

'महानुभाव! मेरे गुरु ने मुझे एक मंत्र दिया था मैं उसकी जप करके विद्या सिद्ध करना चाहता हूँ किन्तु मेरा मन एकाग्र न होने से यह विद्या सिद्धि मुझे कठिन हो रही है।.....'

पुनः वह बोला–

'बंधु! आप बहुत ही पुण्यशाली दिख रहे हैं। लीजिए, इस मंत्र की आराधना आप कीजिए।'

श्रीपाल ने मंत्र लिया, विधि समझकर उसका जप शुरू कर दिया। आश्चर्य की बात है कि श्रीपाल का मन एकाग्र हो जाने से एक ही दिन में उन्हें विद्या सिद्ध हो गई। तब उस वीर ने श्रीपाल की प्रशंसा करते हुए निवेदन किया–

'देव! आपके पुण्य से विद्या सिद्ध हुई है अतः यह विद्या आप रखिये और मुझे मेरे घर जाने की आज्ञा दीजिए।'

श्रीपाल ने कहा–

'भाई! यह उचित नहीं, मैं पथिक हूँ यद्यपि मैंने यह विद्या सिद्ध की है फिर भी इसके स्वामी आप ही हैं। देखिये, पर के धन से कोई धनी नहीं बन सकता और न ही पर की विद्या से कोई विद्याधर बन सकता है।'

यद्यपि उसने बहुत कुछ आग्रह किया किन्तु श्रीपाल ने उसकी विद्या उसे दे दी। तब उसने कहा–

'मित्र! यदि आप इस विद्या को स्वीकार नहीं करते हो तो मेरे पास अन्य दो विद्यायें हैं उन्हें आप अवश्य स्वीकार करो। उनके नाम हैं–जलतारिणी और शत्रुनिवारिणी।'

अतीव आग्रह से श्रीपाल ने उसके द्वारा दी गई दोनों विद्याओं को स्वीकार किया। अनंतर उसके विशेष आग्रह से उसके घर जाकर भोजन-पान आदि करके कुछ दिन विश्राम किया पुनः उसकी मित्रता से प्रसन्न होते हुए उससे विदा लेकर वहाँ से निकलकर आगे बढ़े और अनेक नगरों का भ्रमण करते हुए भृगुकच्छपुर (भरुच) नगर में आ गये। वहाँ आकर जिनमंदिर के दर्शन कर सिद्धचक्र की आराधना की। एक दिन वे उद्यान में एक वृक्ष के नीचे सो रहे थे, जब नींद खुली तो देखा कि–

अनेक पुरुष हाथों में अस्त्र-शस्त्र लिये हुए उन्हें घेरे खड़े हुए हैं। तब निर्भयता से ही श्रीपाल ने पूछा–

'तुम लोग कौन हो? और यहाँ मेरे पास किस लिए आये हो?'

उन मनुष्यों में से एक प्रमुख ने कहा–

'देव! कौशाम्बी नगरी का एक बहुत बड़ा व्यापारी जिसका नाम धवल सेठ है वह पाँच सौ जहाजों में माल भरकर देशांतरों में व्यापार के लिए जा रहा था। सहसा आँधी और तूफान के वेग से उसके जहाज समुद्र की खाड़ी में चले गये और वहाँ अटक गये हैं। अनेक उपायों के द्वारा भी सफलता न मिलने पर धवल सेठ ने एक निमित्तज्ञानी से उपाय पूछा। उन्होंने कहा कि 'किसी गुणी मनुष्य की वहाँ बलि देनी होगी।

चूँकि जल देवी ने आपके विमान कील दिये हैं।' इस समस्या को लेकर सेठ यहाँ के राजा के पास गये थे। राजा ने कहा कि 'आप अपने जहाजों के लिए किसी परदेशी की बलि कर सकते हैं।' सो हम लोगों को परदेशी पुरुष की खोज में घूमते हुए कई दिन निकल गये हैं। अब हमारे भाग्य से आज आपका दर्शन हुआ है। हम लोग आप की शरण में आए हैं यदि हम खाली हाथ जाते हैं, तो मारे जायेंगे।'

इत्यादि वचन सुनकर श्रीपाल बोले–

'ठीक है, अब तुम लोग डरो मत, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।' वहाँ पहुँचकर श्रीपाल ने सारी स्थिति अवगत की। सेठ की आज्ञा से उन्हें स्नान कराकर वस्त्र-आभूषण पहनाये गये और बलि के लिए वहाँ लाकर खड़ा किया गया। हाथ में नंगी तलवार लेकर जल्लाद पहुँच गया, वह श्रीपाल की गरदन को धड़ से अलग करने वाला ही था कि श्रीपाल ने एकदम कड़ कर धवल सेठ को ललकारते हुए पूछा–

'अरे सेठ! तुझे अपने जहाज चलवाना है या मनुष्य का वध? बोल तेरा क्या अभिप्राय है? मेरा बलिदान हँसी-खेल नहीं है। मैं देखता हूँ कौन वीर है जो मेरे सामने टिक सके?'

इतना सुनते ही सब लोग काँपने लगे और धवल सेठ घबरा गया। वह लड़खड़ाते स्वर में बोला–

'मुझे तो अपने जहाज चलवाने हैं। हे वीर! हमें क्षमा कीजिए और इस विपत्ति से हमारी रक्षा कीजिए।'

तब श्रीपाल ने करुणा से प्रेरित होकर कहा–

'ठीक, तुम लोग अपने जहाजों को चलाने के लिए तैयार हो जाओ।'

जब सब लोग अपने-अपने जहाजों पर सवार हो गये, तब श्रीपाल ने पंचपरमेष्ठी के महामंत्र का स्मरण कर सिद्धचक्र का ध्यान किया और अपने हाथ से जहाजों को धक्का लगाया। उसी क्षण सभी जहाज पूर्ववत् गति से चलने लगे। सब लोगों ने श्रीपाल का 'जय जयकार' किया पुनः सभी ने मिलकर श्रीपाल से यात्रा में अपने साथ चलने के लिए प्रार्थना की। धवल सेठ के अतीव आग्रह से श्रीपाल ने कहा-

'यदि आप अपनी कमाई का दशवाँ भाग मुझे देना स्वीकार करें तो मैं चल सकता हूँ।'

सेठ ने सहर्ष स्वीकार किया और बहुत सम्मान के साथ श्रीपाल को अपने जहाज में बिठा लिया।

आकस्मिक एक दिन कुछ डाकुओं ने जहाज पर हमला किया। बहुत कुछ माल लूटकर और धवल सेठ को बाँधकर ले जाने लगे तब सबने आकर श्रीपाल से पुकार की। उस समय श्रीपाल ने अपनी सिंह गर्जना से डाकुओं को भयभीत कर धवल सेठ को छुड़ाया। अनंतर डाकुओं को क्षमा करके उन्हें सम्मान दिया। इससे प्रभावित हो करके डाकू लोग श्रीपाल से प्रसन्न हुए और उन्हें सात जहाज माल भरकर भेंट में दे दिये। अनंतर ये सभी यात्री सकुशल अपने जहाजों को लेकर हंसद्वीप आ गए।

(9)

श्रीपाल एवं धवल सेठ अपने पूर्ण परिकर के साथ हंसद्वीप में पहुँच गये। यहाँ के वन, उपवन एवं शहर की शोभा को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। इस द्वीप में रत्नों की अठारह बड़ी-बड़ी खानें थीं और छोटी तो अनगिनत थीं। यहाँ गजमोती भी अधिक मात्रा में मिलते थे। यहाँ के गगनचुम्बी प्रासाद यहाँ के वैभव को सूचित कर रहे थे।

श्रीपाल शहर की शोभा देखते हुए जिनमंदिर को खोज रहे थे कि वे एक ऐसे मनोरम स्थान पर पहुँचे, जहाँ बहुत ऊँचा सुवर्ण निर्मित एक सहस्रकूट जिनमंदिर था। उसके उच्चतम शिखर को देखकर गद्‌गद होते हुए दूर से ही नमस्कार किया पुनः आगे बढ़कर देखते हैं कि उसके किवाड़ वज्र के हैं और मजबूती से बंद हैं। दरवाजे पर बैठे हुए चौकीदारों से पूछते हैं–

'इस मंदिर के किवाड़ क्यों बंद हैं?'

नौकरों ने हाथ जोड़कर कहा–

'हे महानुभाव! इस मंदिर के द्वार शक्ति परीक्षा के लिए वज्र के बनवाये गए हैं। कितने शूर वीर योद्धा आये किन्तु वे सब इन्हें खोलने में असमर्थ रहे हैं।'

इतना सुनकर श्रीपाल ने मन ही मन सिद्धचक्र का स्मरण किया और 'भगवान की भक्ति में अचिन्त्य शक्ति हैं ऐसा सोचते हुए महामंत्र का स्मरण कर किवाड़ों में हाथ लगाया ही था कि भीषण शब्द के साथ वज्रकपाट खुल गए।

मानों वे किवाड़ श्रीपाल की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। श्रीपाल ने भी हर्ष से रोमांचित होकर अंदर प्रवेश किया-'निःसही, निःसही, निःसही' उच्चारण करके ॐ नमः सिद्धेभ्यः मंत्रोच्चारणपूर्वक जिनेन्द्र के निकट पहुँचकर उनका दर्शन करते हुए साष्टांग नमस्कार किया अनंतर स्तोत्र पाठ में तन्मय हो गये।

इधर राजाज्ञा से नियुक्त पहरेदार कुछ तो वहीं ठहर गए और कुछ शीघ्र ही घोड़े पर चढ़कर राज दरबार में पहुँच कर बोले–

'राजाधिराज! आप जिनकी प्रतीक्षा में थे, वे महापुरुष अपने यहाँ पधार चुके हैं और मंदिर के किवाड़ खोलकर जिनेन्द्रदेव की स्तुति कर रहे हैं।'

राजा कनककेतु हर्ष से विभोर हो पहरेदारों को उचित पारितोषिक देकर तत्क्षण ही अपने परिकर के साथ वहाँ आ गये। पहले भक्तिभाव से जिनेन्द्रदेव के दर्शन किए पुनः श्रीपाल का उचित आदर-सत्कार करते हुए उनसे कुशल-क्षेम पूछी। यद्यपि श्रीपाल के रूप और आकार को देखकर तथा मुनि के कहे अनुसार निमित्त फल को देखकर उनके क्षत्रिय पुत्र के बारे में निःसंदेह थे फिर भी उनका पूर्ण परिचय ज्ञात करने हेतु राजा ने पूछा–

'हे कुमार! आप किस देश के रहने वाले हैं? और आपके यहाँ आने का कारण क्या है?'

श्रीपाल ने सोचा–

'वर्तमान की व्यापारी के साथ की यात्रा की स्थिति से ये मेरे परिचय से क्या विश्वास प्राप्त कर सकेगें कि ये

राजपुत्र हैं? अतः इन्हें अपना सही परिचय न देकर अपने को सामान्य व्यापारी बता देना चाहिए।'

इसी बीच आकाशमार्ग से वहाँ दो मुनिराज आ गये। उन्होंने जिनेन्द्रदेव की वंदना की। राजा ने अतीव भक्ति से गद्‌गद हो गुरु के चरणों में नमस्कार किया और मुनिराज के वहाँ बैठ जाने पर वे श्रीपाल के साथ गुरु के चरण सानिध्य में बैठ गये पुनः हाथ जोड़कर पूछने लगे–

' हे देव! ये महापुरुष कौन हैं? कि जिनके आते ही ये वज्र किवाड़ खुल गये हैं?'

मुनिराज ने अवधिज्ञान से जानकर श्रीपाल का पूर्ण परिचय बता दिया। सुनकर राजा बहुत ही प्रसन्न हुए पुनः वे अपने साथ श्रीपाल को लेकर राजमहल में आ गये। उन्हें स्नान-भोजन आदि कराकर सुखपूर्वक बैठे और उनसे बोले–

'हे कुमार! मैं इस हंसद्वीप का राजा कनककेतु हूँ। मेरी रानी का नाम कंचनमाला है। मेरे दो पुत्र एवं एक पुत्री है, पुत्री का नाम रयनमंजूषा है। पुत्री को विवाह योग्य देखकर मुझे उसके योग्य वर के लिए चिंता रहने लगी। तब एक दिन मैंने अवधिज्ञानी महामुनि के दर्शन कर उनसे पुत्री के वर के लिए प्रश्न किया। मुनिराज ने कहा कि जो पुरुष सहस्रकूट चैत्यालय के वज्रकपाट को खोलेगा, वही तुम्हारी कन्या का पति होगा। तब से मैं आपकी प्रतीक्षा में था सो आज आपके दर्शन हुए हैं अतः अब आप मेरी कन्या को स्वीकार कर हमें कृतार्थ करें।'

राजा के मधुर और कर्णप्रिय वचन सुनकर श्रीपाल ने 'ओम्' कहकर अपनी स्वीकृति दे दी। राजा ने शुभ मुहूर्त में अपनी पुत्री का विवाह कर दिया और श्रीपाल को बहुमूल्य रत्नादि भेंट में दिये। श्रीपाल कुछ दिन वहाँ रहे। धवल सेठ भी वहाँ हंसद्वीप में व्यापार करके अगणित रत्नसम्पदा हस्तगत कर श्रीपाल से मिले और आगे का कार्यक्रम बनाया।

श्रीपाल ने राजा से आज्ञा लेकर रयनमंजूषा को तथा अनेक हाथी, घोड़े, पदाति आदि लेकर जहाज पर आकर आगे के लिए चल दिये।

श्रीपाल और रयनमंजूषा अपनी यात्रा में धर्मचर्चा करते हुए सुखपूर्वक रह रहे थे। कुछ दिनों बाद धवलसेठ रयनमंजूषा के रूपसौंदर्य को देखकर कामवासना से व्याकुल हो गया और उसे प्राप्त करने के लिए चिंतित हो उठा। मंत्रियों के अनेक समझाने के बावजूद वह अपने कदाग्रह को न छोड़ सका। अंत में उसके एक मंत्री ने धवल सेठ की इच्छा को पूरी करने के लिए षड्यंत्र बनाया। दूरवीक्षक पुरुष को बुलाकर एकान्त में समझा दिया गया। उसने दूसरे ही दिन अकस्मात् हल्ला मचा दिया–

'अरे जहाज के यात्रियों! सावधान! सावधान!! कुछ सामने खतरा है। जहाजों में कोलाहल मच गया। तब श्रीपाल आगे बढ़कर 'खतरा क्या है?' देखने की भावना से जहाज के मस्तूल पर चढ़कर देखने लगे कि धूर्तों ने आकर झट से मस्तूल काट दिया, तत्क्षण ही श्रीपाल समुद्र में गिर पड़े।

चारों तरफ हाहाकार मच गया। रयनमंजूषा को पति के समुद्र में गिरने का समाचार मिलते ही वह मूर्च्छित हो गिर पड़ी। दासियों के उपचार से सचेत हुई तो वह जहाज में ही अनाथ जैसी होकर करुण विलाप करने लगी।

धवल सेठ यद्यपि अपनी मनोकामना को सफल होता देख अंतरंग में खुश था फिर भी बाहर से उसने भी हाहाकार करते हुए श्रीपाल के मरने का दुःख मनाना शुरू कर दिया। पुनः वह रयनमंजूषा के पास आकर उसे समझाने लगा और सहानुभूति दिखाने लगा। रयनमंजूषा भी विवेकशील थी वह विचार करने लगी–

'कर्मों की गति विचित्र है पता नहीं समुद्र के अथाह जल में मेरे पति जीवित बचे हैं या नहीं? जो भी हो, जिस सिद्धचक्र की आराधना के बल से पूर्व में पतिदेव कुष्ठ रोग से मुक्त हुए थे आज हमें भी उन्हीं सिद्धों की अरिहंतों की, तथा पंचपरमेष्ठी मंत्रों की शरण लेनी चाहिए।'

इसी प्रकार दो-चार दिवस व्यतीत हो गये।

(10)

धवल सेठ कामाग्नि से दग्ध हो रहा था अतः वह अब और अधिक दिन निकालने में असमर्थ हो गया। तब उसने एक दूती को समझा-बुझाकर रयनमंजूषा के पास भेज दिया। दूती ने उसे समझाना शुरू किया–

'अरे बेटी! तेरा यह नवयौवन रोने-धोने के लिए नहीं है। तू अपने जीवन को सुखी बना। देख, धवल सेठ किसी

महाराजा से कम नहीं है और मैं सच कह रही हूँ इस समय वह तेरे विरह में पागल हो रहा है।'

इत्यादि बातें सुनकर रयनमंजूषा क्रोध में आकर उसका तिरस्कार करते हुए बोली–

'अरी दुष्टे! ऐसे शब्द कहते हुए तेरी जिह्वा के सौ-सौ टुकड़े क्यों नहीं हो गये? तू यहाँ से शीघ्र ही भाग जा.....।'

यद्यपि वह दूती सहम गई फिर भी उसने साहस बटोर कर पुनः पुनः समझाना चालू ही रक्खा। वह बोली–

'पुत्रि! तुम शांत होओ, देखो! मालिक जब प्रसन्न हो तब भला भृत्य को कौन चाहेगा? अरे! वह श्रीपाल तो धनकुबेर सदृश इन धवल सेठ का किंकर ही तो था....।'

किन्तु रयनमंजूषा इन बातों को बिल्कुल ही नहीं सुन सकी। उसने उस दूती को अच्छी तरह अपमानित कर भगा दिया। वह धवल सेठ के पास पहुँचकर बोली–

'हे महानुभाव! वह सती शिरोमणि है, आपके वश में क्या, वह देवों के भी वश में नहीं आ सकती है। मैंने सब कुछ उपाय कर लिए, सब निरर्थक गये। मेरा तो उसने खूब ही तिरस्कार किया है।'

इतना कहकर वह दासी अपने स्थान चली गई। अब धवल सेठ चिंतातुर हो सोचने लगे। जो भी हो, निराश न होकर मुझे तो स्वयं उसके पास पहुँचना होगा। ऐसा सोचकर पापी निर्लज्ज बेखटके रयनमंजूषा के पास पहुँच गया। उसे देखते ही वह सती घबरा गई। उसने वस्त्रांचल से (घूँघट)

अपना मुख ढक लिया और मन ही मन जिनेन्द्रदेव का स्मरण करने लगी। बीच में उसने कहना शुरू किया–

'हे सुंदरी! सुनो, श्रीपाल तो मेरा कृतदास-पैसे का नौकर था। उसके कुल का कुछ पता ही नहीं था, न जाने वह किसका पुत्र था? उसका तो मर जाना अच्छा हुआ। तुम्हें चिंता किस बात की? बताओ, भला मेरे रहते हुए तुम्हें कमी किस चीज की है? यह तुम्हारा यौवन और रूपसौन्दर्य मेरे मन को हर चुका है। प्रिये! मैं तुम्हें अपनी सभी स्त्रियों में प्रधान बनाऊँगा।'

इत्यादि बातों को सुनकर रयनमंजूषा ने कहा–

'हे पिताजी! आप तो मेरे धर्मपिता हैं अथवा मेरे स्वामी के धर्मपिता होने से मेरे श्वसुर हैं। आपके मुख से ऐसे निंद्य वचन मैं सुनना नहीं चाहती।.....'

इतना कहकर वह चुप हो गई। तब धवल सेठ ने अनेक अनुनय-विनय से उसे अनुकूल करना चाहा। जब सब प्रयत्न निष्फल हो गये तब वह जबरदस्ती व्यभिचार करने के लिए आगे बढ़ा। तव वह सती एकदम आर्तस्वर में पुकार उठी–

'हे अरहंत देव! हे दीनबन्धो! हे दयासागर! तुम कहाँ हो? शीघ्र आओ और इस अबला की रक्षा करो।'

इतना कहकर वह एकाग्र चित्त हो आसन से स्थिर बैठ गई। इधर धवल सेठ उसे पकड़ना ही चाहता था कि उसी क्षण सती के शील के प्रभाव से जलदेव का आसन कंपायमान हो गया वह वहाँ आ गया और उसने धवल सेठ को पकड़कर

खूब कसकर बाँध लिया, ऊपर से अपनी गदा के प्रहार करने लगा। इस घटना से जहाज के सभी लोग वहाँ एकत्रित हो गए। सब लोग सेठ की चिल्लाहट को देख रहे थे किन्तु मारने वाले को कोई नहीं देख रहा था, सब आश्चर्यचकित थे। अंततोगत्वा सबने यह समझ लिया कि–

'इस पापी ने रयनमंजूषा का शील भंग करना चाहा था कि उसके शील के प्रभाव से यह दैवी चमत्कार प्रगट हुआ है। कोई देव अदृश्य ही इसे मार रहा है।'

सबने आपस में विचार किया कि–

'चलो, हम लोग सती के चरणों में ही प्रार्थना करें जिससे इस सेठ की भी रक्षा हो और हम लोगों पर भी कोई संकट न आ जावे।'

ऐसा निर्णय कर सब रयनमंजूषा के सामने उपस्थित होकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे–

'हे पतिव्रते! आपके शील के प्रभाव को धन्य है। हे कल्याण रूपिणि! हे देवि! इस धवल सेठ का अपराध क्षमा करो और हम सब पर दया करो। हे दयामूर्ते! आप अब दया करके इस सेठ को बचा लो अन्यथा इसके न रहने पर हम लोगों की भी आजीविका नष्ट हो जाएगी।'

इस प्रकार के दीन वचन सुनकर रयनमंजूषा ने दया से आर्द्र हो कहा–

'हे भगवन्! आपके प्रसाद से मेरे शील की रक्षा हुई है। हे शासन देव! जिन्होंने भी आकर मेरी सहायता की है,

उनसे मेरा निवेदन है कि इस सेठ के अपराध को क्षमा कर दीजिए और इसे प्राणों की भिक्षा दीजिए।'

इतना सुनकर जल देव ने धवल सेठ को छोड़ दिया और बोले–

'हे सती शिरोमणि! तू धैर्य धारण कर, थोड़े ही दिनों बाद तेरा पति श्रीपाल तुझे मिलेगा। वह समस्त राजाओं का अधिपति महाराजा होगा।'

इतना कह कर वह देव अपने स्थान पर चला गया। धवल सेठ संकट से छूटते ही सती के पैरों पर गिरकर बोला–

'पुत्रि! मेरे अपराध क्षमा कर दो। मैं अत्यन्त पापी हूँ। मैंने अपनी करनी का फल पा लिया है। अब इस जीवन में मैं ऐसा निंद्य कार्य कभी भी नहीं सोचूँगा।'

रयनमंजूषा ने धवल सेठ को क्षमा कर दिया और आप देव के मुख से भविष्य में पति के मिलने का समाचार ज्ञात कर शांत चित्त होती हुई महामंत्र का स्मरण करते हुए अनशन, अवमौदर्य आदि तपश्चरण करने लगी। धवल सेठ की जहाज यात्रा जैसे की तैसे चलने लगी और सभी लोग सती के शील की प्रशंसा एवं देव के आगमन की चर्चा करते हुए अपने-अपने काम में लग गए।

(11)

श्रीपाल जैसे ही समुद्र में गिरे सहसा वे महामंत्र का स्मरण करने लगे। एक साधारण सा पत्थर का टुकड़ा भी पानी के ऊपर नहीं तैर सकता, वह डूब जाता है, किन्तु

सैंकड़ों मन पत्थर यदि नाव में भरा हुआ है तो एक भी नहीं डूबेगा। श्रीपाल भी जिनेन्द्रभक्तिरूपी नाव पर बैठे हुए थे अतः वे डूबे नहीं। समुद्र के सदृश ही गंभीर, साहसी, उस धीर-वीर को उसी समुद्र में एक लकड़ी की पटरी बहती हुई मिल गई, उसके सहारे ही वे इतना विशाल समुद्र तैरकर तट पर आ पहुँचे और वहाँ आकर के श्रम से थके हुए एक वृक्ष के नीचे अचेत हो गए।

जब श्रीपाल को होश आया तो देखते है कि अनेक राज-अनुचर उन्हें घेरे खड़े हैं। पूछने पर वे कहते हैं–

'हे नरोत्तम! यह कुंकुम द्वीप है। इस द्वीप के राजा सत्तराज की रानी वनमाला के एक कन्या है उसका नाम 'गुणमाला' है। राजा ने किसी समय एक अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा था कि–

'प्रभो! मेरी सर्वगुणसंपन्न कन्या का वर कौन होगा? उत्तर में मुनिराज ने कहा था कि–'जो पुरुष इस महासमुद्र को अपनी भुजाओं से तैर कर आएगा, वही इसका पति होगा। अतः हे देव! हम लोग आपकी प्रतीक्षा में ही यहाँ पर रह रहे हैं।'

इतनी ही देर में राजा स्वयं अपने भावी जामाता के स्वागत के लिए वहाँ आ पहुँचे। श्रीपाल को स्नान कराकर वस्त्रालंकारों से अलंकृत कर वे बड़े ही उत्सव के साथ अपने शहर में लिवा लाए तथा शुभ मुहूर्त में जिनेन्द्रदेव एवं विनायक यंत्र आदि की पूजा करके अग्नि की साक्षी में कन्या का

विवाह सम्पन्न कर दिया। श्रीपाल भी राजा से बहुत कुछ सन्मान और कन्यारत्न प्राप्त कर वहीं सुख से रहने लगे। किसी दिन गुणमाला के अतीव आग्रह से उन्होंने अपना सविस्तार परिचय बता दिया।

कुछ दिनों बाद धवल सेठ अपने जहाजों के साथ उसी द्वीप में आ गया। वह बहुत कुछ रत्नों का उपहार लेकर राजा के दरबार में आया। वहाँ राज सन्मान प्राप्त कर जब जाने लगा, तब सहसा उसकी दृष्टि वहाँ पर बैठे हुए श्रीपाल पर पड़ी। वह काँप उठा और जैसे-तैसे अपने स्थान पर आकर सोचने लगा–

'अहो! यदि यहाँ मेरा रहस्य खुल गया तो मैं कैसे जीवित बच सकूँगा?'

उसने तुरंत मंत्रियों को बुलाकर मंत्रणा करना शुरू कर दिया। किसी ने तो उसे श्रीपाल की शरण में जाकर अपराध क्षमा कराने के लिए कहा, किसी ने वहाँ से शीघ्र प्रस्थान कर देने को कहा। अनेक विचार-विमर्श के बाद एक मंत्री ने कहा–

'हे सेठ! सुनो, अनेक भांडों को बुलाकर उन्हें राज दरबार में नाचने, गाने के लिए भेज दो और उन्हें अच्छी तरह समझा दो कि जिससे श्रीपाल का काम ही तमाम हो जाए....।'

सेठ ने होनहार के अनुसार वैसा ही किया। कुछ भांड राज दरबार में पहुँच गए। वहाँ वे नाचते-गाते रहे, जैसे ही सभा में श्रीपाल ने प्रवेश किया कि सब के सब एक साथ उनसे चिपट गए और कहने लगे–

'अरे, मेरे बेटे! तू यहाँ कैसे आ गया?'

कोई बोला–

'मेरे भइया! तुम समुद्र में बचे कैसे?'

एक स्त्री के वेष में बोला–

'अहो! मेरे भाग्य से मेरे पति मिल गए?'

ऐसी नाना चेष्टाएँ देखकर राजा ने भांडों को फटकारा फिर भी वे सब एक से एक कुशल थे अतः उन्होंने अनेक युक्तियों से यह समझा दिया कि 'यह मेरा साथी है।' राजा ऊहापोह में पड़ गया। अंत में राजा ने कुपित हो यह आदेश दे दिया कि–

'मंत्रियों! चांडाल को बुलाकर इस दुष्ट, नीच को फाँसी पर लटका दो।'

श्रीपाल में यद्यपि उन भाँडों को तथा चांडालों को भी मार डालने की शक्ति थी, पर वे कर्मोदय की विचित्रता को देखते हुए फाँसी के स्थान पर पहुँच गए। उसी क्षण गुणमाला रोते हुए वहाँ आकर कहने लगी–

'हे नाथ! यह क्या हो रहा है? आपका पराक्रम आज कहाँ चला गया? मेरा क्या होगा और उस मैनासुंदरी तथा रयनमंजूषा का क्या होगा?....।'

अंततोगत्वा श्रीपाल ने गुणमाला को आश्वासन देते हुए कहा–'प्रिये! इसी समुद्र के तट पर एक जहाज में 'रयनमंजूषा' होगी। जाओ, तुम उससे साक्षात्कार करो, तभी हमारे कुल जाति का सही प्रमाण मिलेगा।'

इतना सुनते ही गुणमाला ने वहाँ जहाज के निकट पहुँच कर रयनमंजूषा को ढूँढ़ा। रयनमंजूषा ने भी इस राजकन्या की ऐसी व्याकुलता देखकर पूछा–

'बहन! तुम कौन हो? और यहाँ अपरिचित देश में तुम्हें मेरा नाम कैसे मालूम हुआ?'

गुणमाला ने कहा–

'बहन! मेरे पतिदेव के प्राण संकट में हैं, आप शीघ्र ही चलकर सही स्थिति का बोध कराएँ।'

पुनः रयनमंजूषा को उसने श्रीपाल के वहाँ आने से लेकर उस क्षण का सारा वृत्तांत सुना दिया। तब रयनमंजूषा ने प्रसन्न होकर कहा–

'बहन! तुम चिंता मत करो, वे चरम शरीरी हैं, महाबली हैं और उत्तम राजवंशी क्षत्रिय पुत्र हैं। जब समुद्र उन्हें नहीं डुबो सका तो भला कौन उन्हें मार सकता है?'

फिर भी गुणमाला के आग्रह से और पति के दर्शन की अभिलाषा से रयनमंजूषा वहाँ से चलकर राज दरबार में आ गई। गुणमाला ने पिता से निवेदन किया–

'हे पूज्य पिताजी! आपके द्वारा यह घोर अन्याय किया जा रहा है। आप इन रयनमंजूषा की सारी बातें सुनिए।'

तब राजा ने शांति से बैठकर रयनमंजूषा के मुख से आद्योपांत श्रीपाल का परिचय सुना। ये चंपापुरी के राजा अरिदमन के पुत्र हैं। उज्जैन के राजा पुहुपाल की पुत्री मैनासुंदरी ने अपने सिद्धचक्र के अनुष्ठान से इन्हें कुष्ठरोग से मुक्त किया है इत्यादि इतिहास सुनकर राजा को बहुत पश्चात्ताप हुआ। वे शीघ्र ही श्मशानभूमि में पहुँचकर श्रीपाल से क्षमा याचना करते हुए बोले–

'हे राजकुमार! अज्ञानता से आज मेरे से बहुत बड़ा अपराध बन गया है। उसे आप क्षमा कर दीजिये और महल में पधारिये।'

इतना सुनकर श्रीपाल ने कहा–

'राजन्! इसमें आपका कोई दोष नहीं, यह तो मेरे पूर्वकृत कर्मों का ही फल है। ....अस्तु, राजाओं को बिना विचारे शीघ्रता में कोई भी निर्णय नहीं देना चाहिए।'

अंत में राजा ने सम्मानपूर्वक श्रीपाल को उत्तम हाथी पर बिठाकर सोत्साह राजमहल में प्रवेश कराया। वहाँ गुणमाला और रयनमंजूषा ने पति के चरणों की वंदना कर अपना मन शांत किया। तत्पश्चात् रयनमंजूषा ने धवल सेठ की दुश्चेष्टा तथा देव द्वारा अपने शील की रक्षा की सारी आत्मकथा श्रीपाल को सुनाई। सुनकर श्रीपाल ने कहा–

'प्रिये! मुझे भी यह अनुमान था कि यह सब समुद्र में गिराने की घटना इसी सेठ के षड्यंत्र का ही रूप है। वह आज आपके मुख से स्पष्ट हुआ।'

इधर राजा सत्तराज ने अपने किंकरों द्वारा उस धवल सेठ को बुलवा लिया था। उसे सेवकों ने बहुत ही पीटा था वह सभा में लज्जित हुआ माथा नीचा किये राजा के तिरस्कारपूर्ण शब्दों को सुन रहा था। तभी राजा के आदेश से श्रीपाल वहाँ पहुँचे। उसकी इस दुरवस्था पर श्रीपाल को दया आ गई और वे बोले–

'राजन्! मैंने इन्हें अपना धर्मपिता माना है। यद्यपि

इन्होंने मेरे साथ घोर अन्याय किया है फिर भी इनके द्वारा किये गये दुष्कार्य मेरे लिए मंगल एवं आनंद के कारण ही हुए हैं अतः इन्हें प्राणदण्ड न देकर इन्हें बंधनमुक्त कर दिया जाए।'

इतना सुनकर राजा ने उसे मुक्त कर दिया और श्रीपाल ने उसका बहुत कुछ सम्मान किया। श्रीपाल की इस दयालुता, उदारता, क्षमाशीलता और गंभीरता से धवल सेठ बहुत ही प्रभावित हुआ, पुनः अपने दुष्कृत्यों को सोचकर उसका हृदय आत्मग्लानि से भर गया। उसके हृदय में गहरा पश्चात्ताप हुआ, वह सोचने लगा–

'अहो! कहाँ इस श्रीपाल की करुणा की पराकाष्ठा? और कहाँ हमारी नीचता? आहे!! मुझ जैसे पापी की क्या गति होगी?'

इतना सोचते-सोचते शोक से अनुतप्त हो उसने एक लम्बी सांस ली कि उसका विशाल उदर विदीर्ण हो गया और उसकी मृत्यु हो गई। पापोदय के कारण मरकर वह नरक में चला गया। सेठ की मृत्यु का समाचार सुनकर श्रीपाल को बहुत ही दुःख हुआ। वे सेठानी के पास पहुँचकर उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले–

'हे मातः! मैं आपका धर्मपुत्र हूँ, भविष्य में चाहे जब भी आप मुझे स्मरण करें, मैं आपकी आज्ञा पालन के लिए तैयार हूँ।'

इत्यादि मृदु शब्दों को सुनकर सेठानी ने अपना शोक हल्का करके कहा–

'हे पुत्र! तुम्हारे गुणों की जितनी भी प्रशंसा की जाए, वह थोड़ी ही है।.....जो होना था, हो गया। अब आप मुझे मेरे देश पहुँचा दीजिये।'

सेठानी की इच्छानुसार श्रीपाल ने सारे जहाजों और रत्नों सहित सेठानी को उनके देश पहुँचा दिया और आप अपनी दोनों रानियों सहित वहीं द्वीप में सुखपूर्वक अपना कालयापन करने लगे।

(12)

राजा श्रीपाल रयनमंजूषा और गुणमाला के साथ बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे कि द्वारपाल के द्वारा आज्ञा लेकर प्रवेश कराया गया एक दूत आकर प्रणाम करके निवेदन करता है–

'देव! यहाँ से कुछ ही दूर कुण्डनपुर के राजा मकरकेतु अपनी राजधानी में हैं। उनकी रानी कर्पूर तिलका की कन्या चित्ररेखा के बारे में अवधिज्ञानी महामुनि ने बतलाया है कि 'आप ही उसके पति होंगे।' इसीलिए राजा ने मुझे यहाँ आपके पास भेजा है अतः आप वहाँ पधारकर कन्या के मनोरथ को सफल कीजिये।'

दूत से शुभ समाचार प्राप्त कर श्रीपाल अपनी रानियों से स्वीकृति लेकर कुंडनपुर के बगीचे में पहुँच गये। राजा समाचार मिलते ही वहाँ आये, कुमार की अगवानी कर उन्हें आदरपूर्वक अपने नगर में ले आये पुनः श्रीपाल से उनके कुल-गोत्र आदि का परिचय ज्ञाना कर शुभमुहूर्त में कन्या

का विवाह कर दिया। दहेज में अनेक देश, नगर, सेना और रत्न आदि प्रदान किये। श्रीपाल कुछ दिन वहाँ चित्ररेखा पत्नी के साथ रहे थे कि एक दिन एक दूत के द्वारा पूर्व सदृश ही समाचार विदित कर कंचनपुर पहुँचे। वहाँ के राजा वज्रसेन ने उसका स्वागत किया। उनकी रानी कंचनमाला के सुशील, गंधर्व, यशोधर और विवेक ये चार पुत्र थे तथा विलासमती आदि नौ सौ पुत्रियाँ थीं। निमित्तज्ञानी ने 'इन कन्याओं का पति श्रीपाल होगा', ऐसा कहा था। उसी के अनुसार राजा ने शुभमुहूर्त में इन कन्याओं का विवाह श्रीपाल के साथ कर दिया।

श्रीपाल वहीं पर अपनी नौ सौ पत्नियों के साथ सुखपूर्वक रह रहे थे। इसी बीच एक दूत के द्वारा समाचार विदित कर वे कुंकुमपुर पहुँच गये। वहाँ के राजा यशसेन के गुणमाला आदि चौरासी रानियाँ थीं। इनके स्वर्णबिंब आदि नाम वाले पाँच राजपुत्र थे और शृगारगौरी आदि सोलह सौ राजपुत्रियाँ थीं। इन राजकुमारियों में आठ पुत्रियाँ प्रधान थीं। जिनकी भिन्न-भिन्न आठ समस्यायें थीं। वहाँ पहुँचकर श्रीपाल ने इन आठों की समस्याओं का समाधान कर दिया। तब राजा ने अपनी सोलह सौ कन्याओं का विवाह श्रीपाल के साथ कर दिया। अनेक ग्राम-नगर आदि को दहेज में प्राप्त कर श्रीपाल कुछ दिनों तक वहीं रहे।

एक दिन श्रीपाल ने राजा से अपने वापस जाने की स्वीकृति माँगी, तब राजा ने सभी कन्याओं को श्रीपाल के साथ विदा कर दिया। श्रीपाल सभी को साथ लेकर कंचनपुर आ गये पुनः वहाँ पर भी अपने श्वसुर वज्रसेन से विदाई

लेकर नौ सौ रानियों के साथ कुंडनपुर आये। वहाँ से चित्ररेखा को साथ लेकर वहाँ से भी चल पड़े। मार्ग में अनेक देश की अनेक राजकुमारियों के साथ विवाह किया। जिनमें कोकन देश के पुण्डरीक पुर की दो हजार कन्यायें, मेवाड़ उदयपुर की एक सौ कन्यायें एवं तैलंगदेश की एक हजार कन्यायें थीं। इस प्रकार वे सभी पत्नियों को साथ में लेकर कुंकुम द्वीप आ गये। वहीं पर रयनमंजूषा एवं गुणमाला रहती थीं। श्रीपाल ने बहुत दिनों तक वहीं विश्राम किया। हजारों पत्नियों के बीच सुख से रहते हुए उनका बहुत सा समय व्यतीत हो गया जिसका उन्हें पता भी नहीं लग सका।

एक समय रात्रि में श्रीपाल सुखपूर्वक अपनी शय्या पर शयन कर रहे थे कि अकस्मात् उनकी निंद्रा भंग हो गई और अपनी प्रथम पत्नी सती मैनासुंदरी का स्मरण हो आया। उन्हें यह भी स्मरण हो आया कि मैंने मैनासुंदरी से बारह वर्ष बाद मिलने की प्रतिज्ञा की थी, अब बारह वर्ष पूर्ण होने में कुछ ही दिन शेष रह गये हैं।

'अब हमें अपने निश्चित समय पर अवश्य पहुँचना चाहिये।'

ऐसा विचार आते ही श्रीपाल के स्मृति पटल पर सारी पूर्व की घटनाएँ ज्यों की त्यों आ गईं। सारी बातों का स्मरण करते हुए उनकी शेष रात्रि व्यतीत हो गई। धर्म का ही सब फल मुझे मिला है। ऐसा निश्चय कर नित्य क्रिया से निवृत्त हो भगवान के मंदिर में पहुँचकर पूजा की। तत्पश्चात् अपने

श्वसुर गुणमाला के पिता के पास पहुँचकर उनसे अपने देश जाने के लिए स्वीकृति माँगी। बहुत कुछ मना करने के बाद भी जब राजा ने देखा कि–

'अब इन्हें रोकना संभव नहीं है।' तब उन्होंने स्वीकृति दे दी और विदाई के समय सभी कन्याओं को एकत्रित करके उनसे बोले–

'पुत्रियो! तुम्हें जानकर यह प्रसन्नता होगी कि तुम्हारा पति अत्यंत तेजस्वी, धीर वीर एवं कोटिभट है। तुम सभी अवश्य ही पूर्व जन्म में उत्तम पुण्य संचित किया होगा कि जिससे तुम्हें ऐसा वर मिला है। तुम सभी कन्यायें मन-वचन-काय से इनकी आज्ञा पालन करना और अपनी सास के पास पहुँचकर उनकी सेवा करना तथा वहाँ पर स्थित मैनासुंदरी को अपनी बड़ी बहन समझकर उनको बहुत सम्मान देना।'

इत्यादि प्रकार से पिता की शिक्षा प्राप्त कर सभी कन्यायें प्रसन्न हुईं और पिता को तथा माता को प्रणाम कर उनकी आज्ञा लेकर पतिदेव के साथ वहाँ से रवाना हो गईं।

सर्व रानियों के साथ अनेक सेना और परिकर से घिरे हुए श्रीपाल सोरठ देश आ गये। वहाँ के राजा ने अपनी पाँच सौ कन्याओं का विवाह श्रीपाल के साथ कर दिया। इसके पश्चात् उधर ही गुजरात प्रदेश के राजा ने भी अपनी पाँच सौ कन्याओं को श्रीपाल से ब्याह दिया। इसके बाद महाराष्ट्र देश में चार सौ और वैराट देश में दो सौ राजपुत्रियों को प्राप्त कर आगे बढ़े।

इस प्रकार अनेक देश की राजपुत्रियों से श्रीपाल के

विवाह संबंध हुए थे। उस समय श्रीपाल की रानियाँ आठ हजार (8000) हो गई थीं तथा उनके साथ उस समय बहुत बड़ी सेना थी। विपुल विभूति से सहित हुए श्रीपाल अपने श्वसुर के नगर उज्जैन के बाहर आकर बगीचे में ठहर गये। उनकी विराट सेना ने नगर के चारों डेरा डाल दिया, शाम का समय था। नगर के लोग कोलाहल सुनकर एकदम चिंतित होकर राजा के पास आ गये और बोले–

'महाराज! हम लोगों की रक्षा कीजिए। न जाने किस देश का राजा बहुत बड़ी सेना लेकर आकर नगर के चारों ओर से घेरकर ठहर गया है।'

राजा पुहुपाल ने शीघ्र ही मंत्रियों को बुलाकर मंत्रणा की और अपनी सेना को तैयार होने का आदेश देकर रात्रि में विश्राम के लिए स्वयं अपने अंतःपुर में आ गये।

इधर श्रीपाल भी अपनी सेना को विश्राम का आदेश देकर स्वयं शयन कक्ष में चले गये किन्तु उन्हें नींद नहीं आई, वे सोचने लगे–

'यहाँ से निकलते समय मैंने जो अपनी प्रिया मैनासुंदरी को बारह वर्ष का समय दिया था उसका आज अंतिम दिन है। यदि मैं आज ही रात्रि में उससे नहीं मिला तो वह प्रातःकाल ही जिनदीक्षा धारण कर लेगी पुनः इतनी जल्दी करके मेरा यहाँ आना किस काम का होगा? और मैं भी उसके वियोग में कैसे जीवित रह सकूँगा?'

इत्यादि प्रकार से सोचते हुए श्रीपाल की प्रायः रात्रि

व्यतीत होने वाली थी। वे अंतिम प्रहर में उठे और गुप्तरूप से अपने महल की ओर चल पड़े। सीधे वे माता कुंदप्रभा के द्वार पर आ गये। महल से वार्तालाप की ध्वनि आ रही थी। श्रीपाल वहीं द्वार पर खड़े हो गये और चुपचाप बातें सुनने लगे।

(13)

मैनासुंदरी अपनी सास से कह रही थीं–'हे माता जी!

आज बारह वर्ष बीत चुके हैं। आपके पुत्र आज तक नहीं आये हैं। उनसे मैंने कह दिया था कि यदि आप कही हुई अपनी निश्चित अवधि तक नहीं आएँगे तो मैं आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर लूँगी। इसलिए आप मुझे अब आज्ञा प्रदान करें, मैं प्रातःकाल ही दीक्षा लेऊँगी।'

सास ने कहा–

'बेटी! कुछ समय और धैर्य धरो, जहाँ तुमने बारह वर्ष निकाले हैं, वहाँ दो-चार दिन क्या भारी हैं? मेरा पुत्र वचन का बहुत ही पक्का है वह अवश्य आयेगा। हो सकता है कुछ कारणवश एक-दो दिन अधिक लग जाएँ?'

मैनासुंदरी ने कहा-

'हे मातः! इतने लम्बे समय में उनका किसी प्रकार का समाचार अपने को नहीं मिल सका है। लगता है, वे मार्ग ही भूल गए या किसी सुंदरी के वशीभूत हो मुझे विस्मृत कर दिया या कोई विशेष कारण उपस्थित हो गया हो। जो भी हो, अब उनके आने की आशा करना व्यर्थ है। मेरा चित्त व्यग्र है। माता जी! जहाँ तक बना, मैंने आपकी सेवा की

है उसमें जो भी त्रुटियाँ हुई हों, उन्हें क्षमा कीजिए और अब आप मुझे अपने स्त्रीपर्याय से छूटने के लिए पुरुषार्थ करने की आज्ञा दीजिए।'

माता ने कहा–

'पुत्रि! दो-चार दिन ठहरो, फिर यदि श्रीपाल नहीं आया तो मैं भी तुम्हारे साथ चलकर दीक्षा ले लूँगी। मैनासुंदरी! बताओ, भला पुत्र और पुत्रवधु के वगैर मैं घर में रहकर क्या करूँगी? बेटी! क्षत्रिय पुत्र वचन के बहुत ही दृढ़ होते हैं। फिर क्या कारण हुआ?....'

मैना ने कहा–

'मातः! मुझे भी विश्वास है कि मेरे स्वामी वचन के बहुत ही पक्के हैं किन्तु कर्म के आगे किसी की नहीं चलती है। क्या पता वे आज किस स्थिति में...'

इसी बीच श्रीपाल ने दरवाजा खटखटाया और बोले–

'माता जी! आपका प्यारा पुत्र श्रीपाल द्वार पर खड़ा है। कृपया द्वार खोल दें।'

इन अमृतमय वचनों को सुनते ही माता कुंदप्रभा का मुखकमल कुंद पुष्प के समान खिल उठा। मैनासुंदरी के हर्ष का पारावार नहीं रहा। उसने झट से उठकर दरवाजा खोला और पति के चरणों में प्रणाम कर उनके चरण छुए। श्रीपाल ने भी आगे बढ़कर आदर सहित अपनी माता के चरणों की वंदना कर उनकी चरण रज मस्तक पर चढ़ाई। माता ने बहुत बड़े वात्सल्य के साथ पुत्र के मस्तक पर हाथ फिराते

हुए आशीर्वाद दिया–

'बेटा! चिरायु हो, लक्ष्मी का उपभोग करते हुए आनंद प्राप्त करो और तुम्हारी कीर्तिपताका दिग्-दिगंत में फहराती रहे।'

कुछ क्षण वहाँ बैठकर श्रीपाल ने माता से अपनी यात्रा की सफलता सुनाई। पश्चात् अपने शयन कक्ष में पहुँच गए। मैनासुंदरी ने हर्षातिरेक से अपने आनंदाश्रुओं के जल से ही मानो पति के चरणों का प्रक्षालन किया, पश्चात् गद्गद स्वर में बोली–

'अहा! प्राणनाथ! आज का दिन मेरे लिए एक अपूर्व सौभाग्य का दिन है। बारह वर्षों के बाद अपने स्वामी का सकुशल दर्शन करना, अत्यंत सौभाग्य की ही बात है।'

इत्यादि प्रेमपूर्ण वातावरण में श्रीपाल और मैनासुंदरी ने शेष रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल ही श्रीपाल के आदेशानुसार उनकी सभी रानियों ने आकर माता कुंदप्रभा के दर्शन किए और मैनासुंदरी का भी अभिवादन किया। अनंतर माता की आज्ञा से श्रीपाल ने मैनासुंदरी को आठ हजार रानियों में 'पट्टरानी' पद से विभूषित कर कहा–

'प्रिये! यह सब जो कुछ भी ऐश्वर्य दिख रहा है, वह सब तुम्हारे ही पुण्य से प्राप्त हुआ है। मैं उस समय को कभी भी नहीं भूल सकता कि जब मैं यहाँ के बगीचे में विपत्ति से ग्रसित एक परदेशी के रूप में आया था और तुमने मुझे पति के रूप में स्वीकार कर मेरी सेवा की थी अनंतर सिद्धचक्र आराधना से मुझे कुष्ठरोग से छुड़ाया था।'

इतना सुनकर मैना ने लज्जा से मस्तक नीचा करके नम्रतापूर्ण शब्दों में कहा–

''स्वामिन्! मैं तो एक सामान्य नारी हूँ। यह मेरा ही सौभाग्य है कि मैंने अपने पुण्य के प्रताप से आप जैसे उत्तम पति को प्राप्त किया है। आप कोटिभट हैं, पराक्रमी हैं, धीर-वीर हैं और महान साहसी हैं। यह आपकी महानता है कि जो आपने इन आठ हजार रानियों में मुझे पट्टरानी का स्थान दिया है अथवा धर्म के प्रसाद से कुछ दुर्लभ नहीं है। यह सब सिद्धचक्र आराधना का ही फल है।'

इस प्रकार मैनासुंदरी का पट्टाभिषेक हो जाने के बाद रयनमंजूषा, गुणमाला आदि सभी रानियाँ बड़े ही आदर भाव से सासु कुंदप्रभा और मैनासुंदरी की आज्ञा का पालन करते हुए उनकी सेवा शुश्रूषा करने में अपना अहोभाग्य समझती थीं।

पुनः मैनासुंदरी ने श्रीपाल से कहा–

'स्वामिन्! मेरे पिता ने जो मेरे साथ दुर्व्यव्हार किया था उसके फलस्वरूप आज उनसे कुछ प्रतिशोध लेने की मेरी भावना हो रही है।'

ऐसे वचन सुनकर कुछ सोचकर श्रीपाल ने कहा-

'प्रिये! आपके पिता के कोढ़ी अवस्था में मुझे अपना कन्यारत्न देकर जो उपकार किया है सो शायद ही कोई कर सकता है अतः उनके प्रति कुछ भी प्रतिशोध की बात सोचना भी ठीक नहीं है।'

तब मैना ने कहा–

'नाथ! वे मेरे पिता हैं, उनके प्रति मेरा कोई दुर्भाव नहीं है फिर भी उनकी धर्म में आस्था हो जाए इसलिये उन्हें कुछ चमत्कार दिखाने का भाव मेरे मन में आया है।'

इतना सुनकर पुनः मैना से कुछ देर परामर्श करके श्रीपाल ने एक दूत राजा पुहुपाल की सभा में भेज दिया। दूत ने जाकर कहा–

'राजन्! एक महापराक्रमी कोटिभट राजा अनेक राज्यों में विजय प्राप्त कर अनेक राजाओं को अपने वशीभूत कर आपके राज्य में उपस्थित हुआ है। आपके प्रति उसी वीर पुरुष का संदेश है कि 'आप यदि अपनी और अपने देश की भलाई चाहते हैं तो केवल एक लंगोटी पहनकर, कंबल ओढ़े हुये, सिर पर लकड़ी का बोझ और कंधे पर कुल्हाड़ी रखकर मेरे से शीघ्रातिशीघ्र मिलें। आपकी कुशलता इसी में है अन्यथा मेरी विशाल सेना आपके संपूर्ण राज्य को विध्वंस कर देगी।'

दूत के मुख से ऐसे कटु वचन सुनकर राजा पुहुपाल क्रोध से भड़क उठे और बोले-

'जिसने उद्दण्डतापूर्ण ऐसा अपमानजनक संदेश भेजने का दुःसाहस किया, उसका शिर धड़ से अलग कर दिया जायेगा।'

पुनः उन्होंने प्रहरी को आदेश दिया कि–

'इस दूत को पकड़कर प्राणदण्ड दे देना चाहिए।'

इसी बीच मंत्रियों ने कहा–

'महाराज! दूत को प्राणदण्ड देना राजनीति के विरुद्ध है अतः आप शांत होवें। भला इस दूत का क्या अपराध है? यह तो स्वामी का क्रयदास है।'

पुनः मंत्रियों ने राजा को शांत कर मंत्रणा करना प्रारंभ किया। बहुत कुछ ऊहापोह के बाद मंत्रियों ने यही सलाह दी–

''महाराज! सारे नगर को घेरकर खड़ा हुआ यह कोई राजा अवश्य ही पराक्रमी है। युद्ध के बजाय इससे संधि कर लेना ही अच्छा है अतः इसी आगत दूत से यह समाचार भेज दिया जाए कि आपकी शर्तें मुझे स्वीकार हैं।'

प्रसन्न होकर दूत ने आकर श्रीपाल से सब समाचार सुना दिए, तब श्रीपाल ने आकर मैनासुंदरी से कहा–

'प्रिये! हमारी ही विजय हुई है। राजा पुहुपाल उसी वेश में आने को तैयार हैं। अब मेरे विचार से उन्हें भयमुक्त कर देना ही उचित है।'

मैनासुंदरी से स्वीकृति प्राप्त कर पुनः श्रीपाल ने उसी दूत से कहला दिया कि–

'एक राजा दूसरे राजा का सम्मान करता है अतः आप चिंतित न हों तथा जैसे राजा लोग परस्पर में मिलते हैं ऐसे ही आप आकर मुझसे मिलें।'

योजनानुसार राजा पुहुपाल हाथी, घोड़े आदि अनेक वैभव के साथ शहर के बाहर आगत राजा से मिलने के लिये निकले। उद्यान के निकट पहुँचकर वे पैदल ही चलने लगे। ऐसा देखकर श्रीपाल भी पैदल ही आगे बढ़कर आये। दोनों

परस्पर में गले से गले लगाकर मिलकर प्रसन्न हुए। राजा पुहुपाल के मन में श्रीपाल के प्रति आत्मीयता के भाव जाग्रत हो उठे, तब उनकी ओर एकटक देखते हुए राजा ने कहा–

'हे राजशिरोमणे! आपको देखकर मेरे हृदय में स्वतः ही स्नेह भाव उमड़ता चला आ रहा है, किन्तु मुझे ठीक से स्मरण नहीं हो पा रहा है कि आप कौन हैं? ऐसा लगता है कि मैंने आपको पहले कहीं देखा अवश्य है।'

इतना सुनकर ही श्रीपाल ने मुस्करा कर कहा–

'महाराजा! आप इतने शीघ्र मुझे भूल गये? मैं आपका जामाता श्रीपाल हूँ। बारह वर्ष के बाद परदेश भ्रमण कर आज ही मैं वापस लौटकर आया हूँ।

इतना सुनकर राजा पुहुपाल पुलकित हो उठे। उन्होंने पुनः श्रीपाल को अपने हृदय से लगा लिया और इतने दिनों के प्रवास की कुशल-क्षेम पूछने लगे। उस समय का इन दोनों का मिलन बहुत ही भावपूर्ण था। जनता में हर्ष का वातावरण छा गया पुनः राजा पुहुपाल अपनी पुत्री मैना के पास पहुँचे और बोले–

'बेटी! मैं बहुत ही लज्जित हूँ। मैंने तेरे साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है, फिर भी तू धर्म के रहस्य को जानने वाली है अतः मुझे क्षमा कर दे।'

पिता की बातों को सुनकर मैना ने नम्रता से अपना सिर नीचा कर लिया और बोली–

'पिताजी! इसमें आपका कुछ भी दोष नहीं, यह भी तो

सब मेरे कर्मों का ही खेल था और यह भी सब कर्मों का ही खेल है। यह कर्म प्रत्येक जीव को संसार में अनेक प्रकार के नाच नचाता रहता है अतः इस मनुष्य जन्म का सार यही है कि धर्म को धारण करके इस भव में भी सुखी बनें और परलोक में भी स्वर्ग-मोक्ष को प्राप्त करें।'

इत्यादि प्रकार से धर्म-चर्चा करके राजा पुहुपाल धर्म के प्रभाव को देखकर अतिशय प्रभावित हुए। अनंतर श्रीपाल को बहुत ही वैभव के साथ अपने शहर में प्रवेश कराकर उनका मंगल अभिषेक कराकर उन्हें बहुत कुछ रत्न, वस्त्राभूषण आदि भेंट किए।

(14)

एक दिन श्रीपाल विचार करने लगे–

इस उज्जैन शहर में रहते हुए मेरा बहुत सा समय व्यतीत हो गया है। मैंने परदेश यात्रा करके विपुल वैभव और कीर्ति को अर्जित कर लिया है किन्तु अपने पितृकुल की कीर्ति को नहीं फैला सका हूँ। अभी तक मैं राजजमाता के नाम से ही प्रसिद्ध हूँ अतः अब अपने लक्ष्य की पूर्ति करना आवश्यक है।

इतना सोचकर उन्होंने राजा पुहुपाल से विदा माँगी। जैसे-तैसे स्वीकृति प्राप्त कर वे बहुत बड़ी विभूति के साथ चम्पापुर की ओर चल पड़े। मार्ग में अनेक वन और पर्वतों पर पड़ाव डालते हुए वे चम्पापुर के निकट पहुँचे। वहाँ नगर के चारों ओर सेना ठहराकर आप स्वयं उद्यान में ठहर गये। पुनः

मंत्रियों से मंत्रणा कर अपने चाचा वीरदमन के पास एक दूत को भेजा। उसने जाकर सभा में निवेदन किया–

'महाराज! अतुल ऐश्वर्य से युक्त होकर राजा श्रीपाल आज चम्पापुर में आ गये हैं। आप शीघ्र ही उनसे मिलें और उनका राज्य उन्हें सौंप दें।'

इस समाचार से वीरदमन पहले तो प्रसन्न हुए और श्रीपाल का कुशल समाचार पूछा पुनः दूसरे क्षण ही राज्य वापस देने की वार्ता सुनकर क्रोध भरे स्वर में बोले–

'दूत! क्या तू यह नहीं जानता कि राज्य और स्त्री केवल माँगने से ही कोई दे देते हैं क्या? इन्हें पाने के लिए बाहुबल की नितान्त आवश्यकता पड़ती है। बिना वीरता दिखाये राज्य प्राप्त कर लेना असंभव है। श्रीपाल की बाहुओं में यदि बल है तो वह रणांगण में उतरे। युद्ध में ही राज्याधिकार का निर्णय होगा।'

यद्यपि दूत ने नम्रता भरे शब्दों में राजा श्रीपाल का वैभव बताया और उनके बल पराक्रम की बात सुनाई किन्तु राजा वीरदमन के गर्व को दूर नहीं कर सका। तब उसने आकर श्रीपाल से सारी बातें बता दी। श्रीपाल को आवेश आ गया वे बोले–

'अहो! चाचा वीरदमन को आज इतना अहंकार हो गया है मेरे द्वारा धरोहर में दिए गये मेरे ही राज्य को वे वापस नहीं देना चाहते हैं और युद्ध के लिए तैयार हो रहे हैं। अच्छा, ठीक है।'

ऐसा कहकर उन्होंने तत्क्षण ही रणभेरी बजवा दी। दोनों ही सेनाओं में भयंकर युद्ध होने लगा। तमाम सैनिकों का नाश हो रहा था। यह देखकर दोनों पक्ष के मंत्रियों ने यह कहा–

'अहो! यह सेना का विनाश अपने ही राज्य का तो विनाश है अतः सेना के विध्वंस की अपेक्षा ये दोनों वीर ही स्वयं क्यों न युद्ध कर लें!'

इस प्रकार विचार करके मंत्रियों ने दोनों के समक्ष प्रस्ताव रक्खा। दोनों ने उसे स्वीकार किया और आमने-सामने खड़े हो गये। वीरदमन ने कहा-

'बेटा श्रीपाल! आओ, हम दोनों आपस में युद्ध कर इस राज्य के अधिकारी निर्णय कर लें।'

श्रीपाल ने कहा–

'चाचाजी! हम तैयार हैं, परन्तु आपसे एक बार हम पुनः निवेदन करते हैं कि आप दूसरे के राज्य पर अपने अधिकार का मोह छोड़ दें। आपको मैंने सदैव पिता के तुल्य गिना है अतएव आपको युद्ध में परास्त करना मैं उचित नहीं समझता।'

वीरदमन ने हँसकर कहा–

'अरे! युद्ध भूमि में पिता और पुत्र का संबंध कैसा?'

इत्यादि वचनों से जब वे आपस में नहीं समझे, तब युद्ध शुरू हो गया। इन दोनों में बहुत देर तक भयंकर युद्ध चलता रहा। अंत में श्रीपाल ने वीरदमन को परास्त कर दोनों हाथों से ऊपर उठा लिया। वे उस समय उन्हें धरती पर पटक सकते

थे किन्तु दयार्द्र हृदय से श्रीपाल ने अपने चाचा को पृथ्वी पर धीरे से लिटा दिया। तत्काल ही 'जय जयकार' की विजय ध्वनि से आकाश मण्डल गूँज उठा। तब लज्जित हुए वीरदमन ने कहा–

'पुत्र! मैं तुमसे परास्त हो गया, तुम सचमुच में महाबली कोटिभट हो। तुम्हारे जैसे वीर के जन्म से मेरा वंश प्रशंसनीय है।'

तब श्रीपाल ने उत्तर दिया–

'चाचाजी! यह सब आपके ही आशीर्वाद का फल है। मैं तो आपका आज्ञाकारी हूँ, आप जैसा आदेश देंगे, मैं वैसा ही करूँगा।'

उस समय वीरदमन का हृदय पूर्णतया विरक्त हो चुका था अतः उन्होंने कहा–

'बेटा! अब तुम अपना राज्य संभालो। अब तो मैं जिनदीक्षा लेना चाहता हूँ।'

उसी क्षण आनंद के बाजे बजने लगे। ये सभी लोग गाजे-बाजे के साथ शहर में आ गए। चाचा वीरदमन ने बड़े प्रेम से श्रीपाल का राज्याभिषेक करके राज्य समर्पण कर दिया और उन्हें उचित शिक्षा उपदेश देकर आप स्वयं वन में जाकर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर मुनि बन गए।

इधर अपने राज्य को प्राप्तकर श्रीपाल 'महामंडलेश्वर' राजा बन गए। अपनी प्रजा को सर्व प्रकार से सुखी करते हुए प्रजावत्सल कहलाए। उनका ऐश्वर्य इंद्र के समान प्रशंसनीय था, अनेक देशों के राजा उनकी आज्ञा के अधीन थे। श्रीपाल

प्रतिदिन जिनपूजा और चतुर्विध संघ को दान देना आदि षट् आवश्यक क्रियाओं को बड़ी ही रुचि से किया करते थे।

कुछ समय बाद मैनासुंदरी ने गर्भ धारण किया, तब उसे शुभ दोहले होने लगे। श्रीपाल उनकी पूर्ति करके मैनासुंदरी के साथ जिनपूजा आदि क्रियायें किया करते थे। नवमास बाद मैनासुंदरी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। उसका नाम धनपाल रक्खा गया और शहर भर में उत्सव मनाए गए। राजा ने उस समय इतना दान दिया कि वहाँ शहर में कोई दरिद्री रह ही नहीं गया। इसके बाद मैनासुंदरी के क्रम से महापाल, देवरथ और महारथ नाम के तीन पुत्र और उत्पन्न हुए।

रयनमंजूषा ने सात पुत्रों को जन्म दिया और गुणमाला ने पाँच पुत्र प्राप्त किए। अन्य-अन्य रानियों के भी पुत्ररत्नों की प्राप्ति हुई। इस प्रकार श्रीपाल के सब मिलाकर बारह हजार पुत्र थे। इन सब परिवार से घिरे हुए श्रीपाल इस मनुष्य लोक के सारभूत उत्तम सुखों का अनुभव कर रहे थे।

(15)

महाराजा श्रीपाल अपने सिंहासन पर विराजमान हैं। उनकी बाई ओर भद्रासन पर महासती मैनासुंदरी बैठी हुईं हैं। राजसभा लगी हुई है। वंदीजन महामंडलेश्वर श्रीपाल का यशोगान कर रहे हैं और वीरांगनाएँ चंवर ढोर रही हैं। उसी समय वनमाली आकर महाराज के सन्मुख भेंट में छहों ऋतुओं के फलफूल एक साथ रख देता है और हाथ जोड़कर निवेदन करता है–

'हे देव! अपने नगर के उपवन में महामुनि पधारे हुए हैं। उनकी तपश्चर्या के प्रभाव से वन के जातविरोधी सभी हिंसक क्रूर पशु भी वहाँ शांति से विचरण कर रहे हैं।'

इत्यादि शुभ समाचार सुनते ही राजा श्रीपाल अपनी महारानी मैनासुंदरी के साथ अपने सिंहासन से उठ खड़े हुए और जिस दिशा में महामुनि विराजमान थे, उसी दिशा में सात पैंड आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम किया पुनः प्रसन्न हो वनमाली को बहुत कुछ पुरस्कार देकर विदा किया और आप स्वयं गुरु की वंदना के लिए जाने को तैयार हो गए। उसी समय मंगल प्रस्थान के बाजे बजने लगे। आनंदभेरी को सुनते ही सभी प्रजा के लोग उत्साहपूर्वक घर से निकल पड़े।

राजा ने उपवन में पहुँचकर विधिवत् मुनिराज की वंदना की।

पूजन-सामग्री लेकर रत्न आदि बहुमूल्य वस्तुओं के साथ-साथ अष्टद्रव्य से उनके चरणों की पूजा की पुनः नाना स्तोत्रों से स्तुति करके उनके चरण सानिध्य में बैठ गए, गुरुदेव का दिव्य उपदेश सुना। अनंतर श्रीपाल ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की–

'हे भगवन्! अब मैं आपके श्रीमुख से अपने पूर्व के भवों को सुनना चाहता हूँ।

प्रभो! किस पाप के उदय से मुझे कुष्ठरोग से ग्रसित होना पड़ा? किस पुण्योदय से मुझे सिद्धचक्र व्रत धारण करने के लिए प्रेरणा मिली? पुनः कौन से पापोदय से मैं

समुद्र में गिरा? किस पुण्योदय से समुद्र से बाहर निकलने में समर्थ हुआ? भांड़ों ने मुझे अपना कुटुम्बी क्यों बताया? और किस कारण से उस मिथ्या आरोप का निराकरण हुआ? मैनासुंदरी जैसी पतिव्रता, रयनमंजूषा जैसी शीलशिरोमणि आदि आठ हजार सुंदरी रानियों की प्राप्ति, मेरे में कोटिभट का बल तथा यह महामंडलेश्वर का ऐश्वर्य भी मुझे किस पुण्य से प्राप्त हुआ है? हे देव! यह सब आपके मुखारविंद से सुनने की मुझे उत्कट अभिलाषा हो रही है। सो कृपाकर मुझे आप सुनाइए।'

राजा के आग्रहपूर्ण निवेदन को स्वीकार कर महामुनि अपने दिव्य अवधिज्ञान से सारी बातें जानकर स्पष्ट कहने लगे–

'हे वत्स! तुम अपने प्रश्नों का उत्तर सुनो। जम्बूद्वीप के इसी भरत क्षेत्र में रत्न संचयपुर नाम का एक सुंदर नगर है। वहाँ का राजा श्रीकण्ठ विद्याधर था, वह चतुरंग सेना का स्वामी महाबलवान् और नीतिवान् भी था। उसकी पट्टरानी का नाम श्रीमती था, वह रूपवती, गुणवती और धर्मात्मा थी। प्रतिदिन चार प्रकार के संघ को चार प्रकार का दान देना यह उसकी दैनिक चर्या थी। एक दिन ये राजदम्पत्ति जिनमंदिर गये थे। वहाँ से वंदना कर वापस लौटते समय उन्हें एक दिगम्बर मुनि के दर्शन हुए। उनकी वन्दना, स्तुति करके उनसे धर्मोपदेश सुना। पश्चात् उन दोनों ने गुरु से कुछ व्रत ग्रहण कर लिए। राजा ने जो श्रावक के व्रत लिए थे, तीव्र मोह और मिथ्यात्व के उदय से उसने उन व्रतों को तो छोड़

दिया प्रत्युत् धन, ऐश्वर्य, यौवन और शक्ति आदि के मद में चूर होकर तथा मिथ्यावादियों के चक्कर में आकर मिथ्यादेव-गुरु और धर्म की उपासना करना शुरू कर दिया। परिणाम-स्वरूप वे जैनधर्म की निंदा करने में रुचि लेने लगे।

एक दिन की बात है, वे राजा अपने सात सौ (700) वीरों के साथ वन में क्रीड़ा के लिए गये। वहाँ एक गुफा में महान् परीषह विजयी एक दिगम्बर मुनि ध्यान में विराजमान थे। उनका शरीर अत्यंत कृश था, धूलि से मलिन था। वे डांस-मच्छरों के काटने का कष्ट झेलते हुए भी शरीर से पूर्ण निःस्पृह थे। राजा श्रीकण्ठ उन मुनि को देखते ही अपनी क्रीड़ा में अपशकुन समझकर घृणा से चिल्ला पड़े–'यह कोढ़ी है।' इतना कहकर उन्होंने मुनि को वहाँ से उठवाकर पास के समुद्र में गिरवा दिया। समुद्र में गिरने के बाद भी उन महामुनि की ध्यानमुद्रा जरा भी चलायमान नहीं हुई। इस चमत्कार को देखकर उस राजा के हृदय में दया का कुछ स्त्रोत बहा और उसने सेवकों को आज्ञा देकर मुनि को बाहर निकलवा दिया। पश्चात् वे अपने राज्य में वापस आ गये।

कुछ दिनों बाद राजा पुनः वन में क्रीड़ा को गये। उस समय भी उन्होंने वन से आहार के लिए आते हुए अत्यंत कृशकाय परम तत्त्वज्ञानी एक महामुनि को देखा। अपने सन्मुख मुनि को देखकर राजा ने क्रोधित होकर कहा–

'ऐ बेशर्म निर्लज्ज! दिगम्बर! नंगे घूमते हुए तुझे शरम नहीं आती? धूलि से मलिन शरीर करके ऐसा घृणित रूप

बनाकर तू क्यों घूम रहा है? तुझे तो मरना चाहिए, तेरा मस्तक काट डालना चाहिए।'

इतना कहते हुए राजा ने मुनि को मारने के लिए अपनी तलवार उठाई कि सहसा उसके हृदय में दया का उद्रेक हो आया। वे तत्क्षण ही तलवार म्यान में रखकर वापस घर लौट आये।

ऐसे परमतपस्वी दिगम्बर मुनि पर दो बार उपसर्ग करने से ही उस राजा को महान् पाप का बंध हो गया था। एक दिन सहजभाव से अपनी विशेषता बतलाते हुए राजा श्रीकंठ ने अपनी महारानी श्रीमती से ये सब बातें बता दीं। सुनते ही रानी को बहुत ही खेद हुआ। वह मन में सोचने लगी–

'हे भगवन्! मैंने कौन से ऐसे पाप किये थे कि जिससे मुझे ऐसा विवेकहीन मिथ्यादृष्टि पति मिला है। अब मैं क्या करूँ? किससे अपनी व्यथा कहूँ?'

इस प्रकार खेद-खिन्न होती हुई रानी उदास हो गई और भोजनपान छोड़कर अपनी शय्या पर सो गई। कुछ ही देर बाद राजा को महल में रानी की उदासी का पता चला। उसकी सखी ने कहा–

'महाराज! आपने जो दिगम्बर मुनियों को कष्ट दिया है और मुनि से श्रावक के व्रत लेकर उन्हें छोड़ दिया है, इसी कारण से रानी का मन दुःखी हो रहा है। उन्होंने तो आज भोजन भी नहीं किया है।'

इस बात को ज्ञात कर राजा बहुत ही लज्जित हुए। वे रानी के पास पहुँचे और मधुर शब्दों में उन्हें सान्त्वना देते हुए बोले–

'प्रिये! निश्चित ही मुझसे महान भूल हुई है। मैंने मिथ्यादृष्टियों के बहकावे में आकर दिगम्बर मुनियों पर उपसर्ग करके महान अनर्थ किया है। ओह! मैंने स्वयं ही नरक पथ का मार्ग खुला कर लिया है। प्रियतमे! मुझे अब दुर्गति में जाने से बचाओ। मैं जो कुछ भी कर चुका हूँ, उसकी निंदा करता हूँ।'

राजा ने इस प्रकार के पश्चात्तापपूर्ण वचनों को सुनाकर रानी को कुछ शांति मिली। वह बोली–

'हे नाथ! आपने सम्यक्त्व को छोड़कर मिथ्यात्व का सेवन किया है सो निश्चित ही संसार में अनंत दुःखों का कारण है। जैन शास्त्रों में यह लिखा है कि जो कोई भी दिगंबर मुनियों को कष्ट पहुँचाते हैं, वे नरक-निगोदों को प्राप्त कर लेते हैं अतः हे स्वामिन्! यदि आपको संसार से भय हुआ है तो अब आप इन दिगंबर मुनियों के पास चलें। उनसे पुनः जिनधर्म ग्रहण कर इस किए गए पाप से छूटने का उपाय पूछें, तभी भविष्य में दुःखों से बचा जा सकता है।'

रानी की बात सुनकर राजा ने गुरु के पास चलना स्वीकार किया और रानी की संतुष्टि के लिए वे रानी को साथ लेकर जिनमंदिर गए। वहाँ जिनप्रतिमाओं की वंदना स्तुति करके वहीं पर विराजमान दिगम्बर महामुनि के पास पहुँचे। उन्हें नमस्कार करके उनके पास बैठ गए पुनः सरलभाव से मुनि के समीप अपने द्वारा किए गए सभी दुष्कृत्यों को कह सुनाया और पुनः प्रार्थना करने लगे–

'हे दयानिधे! अब आप मुझे इन पापों की निवृत्ति का उपाय बताइए और मुझे घोर नरक में जाने से बचा लीजिए।'

यह सुनकर मुनिराज ने कहा–

'राजन्! यदि तुम वास्तव में अपने पापों का प्रायश्चित करना चाहते हो तो सिद्धचक्र का विधान करो, इसी से तुम्हारे अशुभ कर्मों का नाश होगा और तुम दुर्गति में जाने से बच सकते हो।'

राजा ने सिद्धचक्र विधि समझने की इच्छा प्रगट की, तब मुनिराज ने उन्हें सिद्धचक्र विधान, उसके अनुष्ठान और व्रत की सारी विधि समझा दी। राजा ने बड़े ही आदर से मुनिराज से सम्यक्त्व ग्रहण करके यह सिद्धचक्र व्रत भी ग्रहण कर लिया। वे अपने राजमहल आ गए और उस दिन से प्रतिदिन ही जिनेन्द्र भगवान की पूजा करने लगे, मुनियों को आहार आदि देने लगे तथा आष्टान्हिक पर्व में व्रत ग्रहण कर सिद्धचक्र विधान का अनुष्ठान करना शुरू कर दिया। इस प्रकार से आठ वर्ष तक व्रत का पालन कर अंत में अच्छे समारोह के साथ व्रत का उद्यापन किया। जीवन के अंत में सल्लेखना विधि से मरण करके उन्होंने स्वर्ग में देवपद प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार व्रत के अनुष्ठान से रानी श्रीमती भी मरण के बाद उसी स्वर्ग में, उन्हीं देव की देवांगना हो गई। वे दोनों देव दम्पत्ति स्वर्ग के दिव्य सुखों को भोगकर अंत में वहाँ से च्युत होकर यहाँ पर आप राजा श्रीपाल और मैनासुंदरी हुए हैं।'

हे राजन्! तुमने पूर्व भव में अपने 700 वीरों के साथ-साथ

मुनिराज को 'कोढ़ी है, कोढ़ी है' कहा था। उसी के पाप से तुम इस भव में 700 उन्हीं वीरों सहित 'कोढ़ी' हुए हो।

मुनिराज को समुद्र में गिरवाने के पाप से तुम्हें भी समुद्र में गिराया गया है तथा मुनि को पुनः समुद्र से निकालने के पुण्य से तुम भी समुद्र से तिर सके हो।

तुमने मुनिराज को 'मलिन, नंगे, निर्लज्ज' आदि कह कर उपहास किया था, इसी पाप के फल से भांडों ने भी तुम्हें 'अपना पुत्र, भाई आदि कहकर उपहास किया है।

तुमने मुनि को 'मारो, मारो' कहकर तलवार निकाल कर उन्हें मारना चाहा था, उसी पाप से तुम्हें फाँसी का आदेश सुनाया गया था किन्तु तुमने मुनि पर दया कर दी थी, मारा नहीं था अतः तुम्हारी भी रक्षा हो गई है।

अनंतर तुमने सम्यक्त्वी श्रावक बनकर सिद्धचक्र विधान और आष्टान्हिका व्रत का अनुष्ठान किया था, उसी के पुण्य प्रभाव से इस भव में तुमने अपार यश और विपुल वैभव प्राप्त किया है। साथ ही पूर्व भव की रानी श्रीमती का जीव पूर्व के संस्कार से ही इस भव में मैनासुंदरी के रूप में तुम्हारा उपकार कर रहा है।

हे महानुभाव! तुमने जो गुरु के पास अपने दुष्कृत्यों की आलोचना करके प्रायश्चित्त ग्रहण कर लिया था, उसी के फलस्वरूप तुम नरकों में जाने से बच गये हो, प्रत्युत् स्वर्ग में देवपद के अनुपम सुखों को भोगकर यहाँ आकर भी महामंडलेश्वर राजा हुए हो किन्तु मुनिनिंदा और मुनि के

ऊपर किया गया उपसर्ग, इनसे जो पाप बँध जाता है वह 'निकाचित' कहलाता है अर्थात् उसका कितना भी प्रायश्चित्त कर लिया जाए फिर भी उसका कडुवा फल भोगना ही पड़ता है, बिना भोगे नहीं छूटता है। उसी के कारण तुम्हें इस जीवन में ये कष्ट भोगने पड़े हैं इसलिए हे भव्य! तुम्हें मुनियों के प्रति किंचित् मात्र अपकार के भाव कभी मन में भी नहीं लाना चाहिए और तो क्या, स्वप्न में भी गुरुओं की निंदा न करनी चाहिए, न सुननी ही चाहिए तथा गृहस्थाश्रम में रहते हुए सतत ही श्रावक के व्रतों का पालन करते हुए सिद्धचक्र मंत्र, यंत्र, विधान और आष्टान्हिक व्रत के अनुष्ठान में श्रद्धा रखनी चाहिए।'

इस प्रकार विस्तार से मुनिराज के मुख से अपने पूर्वभव सुनकर राजा श्रीपाल बहुत ही संतुष्ट हुए पुनः मुनिराज की बार-बार वंदना करके अपने राजप्रसाद में वापस आ गये।

(16)

महाराज श्रीपाल अपने महल की छत पर बैठे हुए चारों दिशाओं की प्राकृतिक शोभा का अवलोकन कर रहे थे कि छाये हुए बादलों में सहसा बिजली चमकी और क्षण भर में लुप्त हो गई। बिजली की इस क्षणभंगुर प्रक्रिया को देखकर वे मन में सोचने लगे–

'अहो! इस बिजली की चमक के समान ही ये मेरे धन, वैभव और यौवन आदि क्षणभंगुर हैं। ये सब नियम से नष्ट होने वाले हैं। संसार में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। मैंने

स्वयं भी अपने जीवन में कितने परिवर्तन देखे हैं अतः इस परिवर्तनशील जगत में भला मोह करना कहाँ तक उचित है? ये विषयभोग आदि स्वेच्छा से नहीं छोड़े जाते हैं तो स्वयं ही एक दिन जीव का साथ अवश्य छोड़ देते हैं।'

इस प्रकार मन में वैराग्य भावना के उदित होते ही राजा श्रीपाल बैठे-बैठे ही बारह भावनाओं का चिंतवन करने लगे। अनंतर उन्होंने राज्य वैभव को छोड़कर दीक्षा लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया और अपने बड़े पुत्र को बुलाकर बोले–

'हे पुत्र! मैंने चिरकाल तक इस राज्य का संचालन किया है, अब मैं अपने शेष जीवन को तपश्चर्या में लगाकर कर्मों का नाश करना चाहता हूँ जो कि अक्षय सुख का कारण है अतः अब तुम यह राज्यभार सँभालो।'

पिता के मुख से इतना सुनते ही धनपाल एकदम हतप्रभ हो गया और घबराया हुआ बोला–

'हे पिताजी! आज आप क्या कह रहे हैं? क्या आपके बिना मैं इस राज्य को सँभालने में समर्थ हूँ? क्या आपके वियोग में यह वैभव, यह परिवार और यह सारी प्रजा सुख का अनुभव कर सकती है?....

इतना सुनकर महाराज श्रीपाल ने पुत्र को धैर्य देते हुए अनेक प्रकार से शिक्षायें दीं पुनः मंत्रियों को बुलाकर पुत्र के राज्याभिषेक के लिए तैयारी करने का आदेश दे दिया। अनंतर वे अपनी माता कुंदप्रभा और प्रियतमा मैनासुंदरी, रयनमंजूषा आदि से भी मिले। माता ने एक क्षण के लिए कुछ सोचा किन्तु पुनः–

'यही सनातन परम्परा है।'

ऐसा निर्णय कर स्वयं भी दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। मैनासुंदरी ने भी पति के वैराग्य की सराहना करते हुए कहा–

'स्वामिन्! आज आपने ही बहुत अच्छा विचार किया है। अहो! मनुष्य पर्याय का सार तो इसी में है कि जैनेश्वरी दीक्षा लेकर अक्षय-अविनाशी मोक्ष सुख प्राप्त किया जा सके। जिन्होंने अंत तक अपने को सांसारिक भोगों में ही फँसा रक्खा है वे बेचारे दीन प्राणी अपनी संसार परम्परा को भला कैसे नष्ट कर सकते हैं? हे देव! आपके साथ ही मैं भी आर्यिका दीक्षा लेकर अपनी स्त्री पर्याय का छेद करूँगी। अनंतर सम्यक्त्व के बल से दो-तीन भवों में ही अपने लक्ष्य-भूत निर्वाण को प्राप्त कर लूँगी।'

इसी प्रकार से अन्य कई रानियों ने तो पति के वैराग्य को अच्छा कहा तथा कितनी एक रानियों ने तो पति के वियोग का स्मरण कर सिहर उठीं और पति के समक्ष कुछ दिन और घर में रहने के लिए अनुनयविनय करने लगीं किन्तु श्रीपाल ने शांत भाव से सभी को संसार की नश्वरता का बोध कराया। साथ ही मैनासुंदरी ने भी अपने मधुर शब्दों से अपनी बहनों को (सौतों को) संबोधन करके धैर्य बँधाया।

मंत्रियों के द्वारा राज्याभिषेक की तैयारी हो जाने पर महाराज ने विधिवत् पुत्र का राज्यपट्ट पर अभिषेक करके उसे अपना मुकुट पहना दिया और आप स्वयं मुख्य-मुख्य प्रजा के लोगों से अनुमति लेकर वन में चले गये।

वहाँ पर महामुनिराज विराजमान थे। ये सभी लोग उनके चरणों की वंदना करके नाना स्तोत्रों से स्तुति करने लगे। अनंतर श्रीपाल ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की–

'हे प्रभो! मैं अनादिकाल से इस संसार में परिभ्रमण करता आ रहा हूँ। मैं अब इन जन्म-मरण के दुःखों से मुक्त होना चाहता हूँ अतः हे दयासिन्धो! मुझे संसार से पार करने वाली ऐसी जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कीजिए।'

मुनिराज ने शांत तथा गंभीर स्वर में कहा–

'वत्स! तुमने बहुत ही उत्तम निर्णय लिया है। यह जैनेश्वरी दीक्षा ही संसार के दुःखों से छुटाने वाली है।'

इसी बीच चम्पापुर की सारी जनता तथा श्रीपाल के कुटुम्बीजन माता, स्त्रियाँ, पुत्र, पौत्रादि आदि सभी लोग वहाँ पर आ पहुँचे। श्रीपाल ने सबके समक्ष अपने वस्त्र-आभूषण आदि उतारकर अपने ही हाथों से अपने केशों का लोच करके गुरु के सानिध्य में दिगम्बर मुद्रा ग्रहण कर ली। गुरु ने भी विधिवत् उन्हें अट्ठाईस मूलगुण प्रदान किए और उत्तरगुणों के भी अनेक भेद समझा दिए। राजा श्रीपाल के साथ ही उनके सात सौ (700) वीरों ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली।

माता कुंदप्रभा और मैनासुंदरी आदि आठ हजार (8000) रानियों ने भी मात्र श्वेत साड़ी धारण करके आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली। उस समय चम्पानगरी के अनेक भव्य जीवों ने मुनि, आर्यिका और श्रावक-श्राविका के व्रत ग्रहण कर अपने को मोक्षमार्ग में लगा लिया। सर्वत्र जैनधर्म की 'जय जयकार' होने लगी।

इतने विशाल चतुर्विध संघ (मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका) के दर्शन करके लोगों ने अपने को धन्य माना और चम्पानगरी को भी पूज्य समझने लगे।

श्रीपाल महामुनि अपने गुरु की आज्ञा लेकर सिंह के समान एकाकी होकर वनों में, निर्जन प्रदेशों में, पर्वतों पर और गुफाओं में ध्यान का अभ्यास करने लगे। ये महामुनीश्वर उत्तम संहनन के धारी थे, सभी परीषहों को सहने में धीर-वीर गम्भीर थे। इस प्रकार दुर्धर तपश्चरण करते हुए ये मुनिराज कभी वृक्ष के नीचे योग धारण कर लेते थे, कभी पर्वत के शिखर पर आतापन योग से स्थिर हो जाते हैं और कभी नदी के किनारे अभ्रावकाश योग में लीन होकर अपनी शुद्ध आत्मा का ध्यान करते थे।

इस प्रकार से धर्मध्यान करते हुए वे महामुनि शुक्लध्यान में लीन हुए और तत्क्षण ही मोहनीय कर्म का नाश कर बारहवें गुणस्थान में आ गये। वहाँ पर बहुत ही लघु अंतर्मुहूर्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय का नाश कर तेरहवें गुणस्थान में पहुँचते ही केवली भगवान हो गये। उसी समय देवों के आसन कंपायमान हो उठे। इंद्र की आज्ञा से कुबेर ने अर्धनिमिषमात्र में गंधकुटी की रचना कर दी। सौधर्म इंद्र स्वयं असंख्य देव-देवियों के साथ वहाँ आ गया। उसने केवली भगवान की पूजा करके वहाँ गंधकुटी में बैठकर भगवान का दिव्य उपदेश श्रवण किया।

देव, मनुष्य और विद्याधर सभी ने मिलकर भगवान श्रीपाल के केवलज्ञान का महामहोत्सव मनाया था। इसी

प्रकार श्रीपाल स्वामी दिव्य केवलज्ञान के द्वारा तीनों लोकों के समस्त पदार्थों को हस्तरेखावत् देखने में समर्थ हो गए। उन्होंने बहुत काल तक भव्यजीवों को कल्याण मार्ग का उपदेश दिया। अंत में सर्व अघाति कर्मों का भी नाश करके एक समय मात्र में शरीर से रहित अशरीरी होते हुए लोक के अग्रभाग पर जाकर विराजमान हो गये। सर्व कर्मांजन से रहित निरंजन परमात्मा कृतकृत्य हो गये। देवों ने आकर उनके निर्वाण समय की पूजा की।

मैनासुंदरी ने भी घोर तपश्चरण करते हुए अपने शरीर को अत्यन्त कृश कर दिया था। अंत में सल्लेखना विधि से शरीर का त्यागकर आर्यिका मैनासुंदरी ने सम्यक्त्व और संयम के प्रभाव से स्त्रीलिंग का छेद कर दिया और सोलहवें स्वर्ग में बाईस सागर की आयु को धारण कर उत्तम देवपद प्राप्त कर लिया। माता कुंदप्रभा ने भी आर्यिका जीवन में उत्तम तप को करते हुए संन्यास विधि से मरण कर सोलहवें स्वर्ग में ही उत्तम देवपद प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार रयनमंजूषा, गुणमाला आदि आर्यिकाओं ने भी अपने-अपने शुभ भावों के अनुसार स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया था।

इस प्रकार मैनासुंदरी ने बचपन में आर्यिका के पास विद्या अध्ययन करके धार्मिक संस्कारों को दृढ़ किया था पुनः कर्मसिद्धांत पर अटल रहकर पिता के रोष को सहन किया। कुष्ठी पति को पाकर भी दुःखी न होकर अपने पातिव्रत्य गुण से नारी सृष्टि में मणि के समान सुशोभित हुई। पतिसेवा आदि कर्तव्य के पालन से वे आज भी भारतीय

नारियों के लिए उदाहरण बनी हुई हैं पुनः सिद्धचक्र की आराधना के प्रभाव से पति के कुष्ठ को दूर करने से प्रत्येक आष्टान्हिक पर्व में प्रतिदिन जैन समाज की महिलाएँ मैनासुंदरी के गुणों का गान करती हैं।

'श्री सिद्धचक्र का पाठ, करो दिन आठ, ठाठ से प्राणी।
फल पायो मैनारानी।।'

ये पंक्तियाँ प्रायः घर-घर में गुनगुनाई जाती हैं। इसी तरह इस सिद्धचक्र के प्रभाव से राजा श्रीपाल भी करोड़ों योद्धाओं के सदृश बल को प्राप्तकर 'कोटिभट' कहलाये। अतुल राज्य संपदा के धनी होकर 'महामंडलीक' महाराजा प्रसिद्ध हुये। आठ हजार रानियों के स्वामी हुए तथा मैनासुंदरी भी उन आठ हजार सपत्नियों (सौतों) में प्रधान पट्टरानी हुई। चिरकाल तक इन दंपत्ति ने राज्य सुख पुत्र-पौत्रादि के सुखों का उपभोग किया। अनंतर धर्म को न भूलते हुए जैनेश्वरी दीक्षा लेकर अपना अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष उसे प्राप्त कर लिया है। श्रीपाल तो साक्षात् मोक्ष में विराजमान हो चुके हैं। मैनासुंदरी भी स्वर्ग से आकर मनुष्य पर्याय प्राप्त कर पुनः दैगंबरी दीक्षा लेकर सर्व कर्मों का नाश करके मोक्ष को प्राप्त करेंगी, ऐसा जैन इतिहास के पृष्ठों में अंकित है।

।।इति शं भूयात्।।